सम्पूर्ण शिव विवाह की अमर कथा | शिव-स्तुति,शिवजी की आरती

सम्पूर्ण शिव-पार्वती विवाह की **अमर कथा भगवान शिव** के विवाह को भारतीय सनातनी परम्पराओं साथ ही आध्यात्मिक कथाओं में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। तो आइये जानते है **भगवान् शिव माता पार्वती के विवाह की अमर कथा शिव पार्वती विवाह कथा- Shiv Parwati Vivah Katha श्री शिव-स्तुति**

श्री शिव -स्तुति शिव विवाह की अमर कथा

सत् सृष्टि ताण्डव रचयिता, नटराज राज नमो नमः ।

हे आद्यगुरु शंकर पिता, नटराज राज नमो नमः ॥

गम्भीर नाद मृदूंगना, धधके उर ब्रह्मण्डमां ।

नित होत नाद प्रचण्डना, नटराज राज नमो नमः ॥

शिर ज्ञान-गंगा चन्द्रमा, चिद ब्रह्म ज्योति ललाटमां ॥

विष नाग माला कण्ठमां, नटराज राज नमो नमः ॥

तव शक्ति वामांगे स्थिता, हे चन्द्रिका अपराधिका ||

चहु वेद गाये संहिता, नटराज राज नमो नमः ॥

शिव विवाह कीअमर कथा/शिवजी का कथा श्रवण

हे भरद्वाजजी, त्रेता युग में एक बार भगवान शिवजी और उनकी धर्मपत्ना सती की कथा श्रवण की इच्छा हुई। वह दोनों कैलास से नीचे उतरे तथा अगत्स्य ऋषि के आश्रम में आए। अगत्स्य ऋषि ने शिवजी और सती का सम्मान करके पूजा की। शिवजी ने सोचा यह सन्त कितने सरल हैं। मैं इनके पास कथा श्रवण हेतु आया हूं, और यह वक्ता बनकर कथा कहेंगे। नियमानुसार तो श्रोता को वक्ता की पूजा करनी चाहिए। किन्तु धन्य है इस सन्त को कि वक्ता होने पर भी ये श्रोता की पूजा करते हैं। शिव जो ने अगत्स्यजी के भाव का सच्चा अर्थ किया।

किन्तु शिवजी की पूजा करके अगत्स्यजी जब सतीकी पूजा करने लगे तब सती ने इसका गलत अर्थ किया। उन्होंने सोचा हम आए और अगत्स्यजा लगे बस करने हमारी पूजा। जो आदमी खुद घबरा गया वह कथा क्या कहेगा?

दक्ष की बेटी बुद्धिमान बाप की कन्या है। सती में बुद्धि तत्व अधिक काम कर रहा था, अतः उन्होंने पूजा का गलत अर्थ किया। सती में यदि सच्चा राम प्रेम होता तो वह कभा ऐसा विचार नहीं करती।

किसी व्यक्ति के प्रति हमारा अत्यन्त प्रेम और सद्भाव हो, तीस वर्ष बाद उसका खत आए, और देने के लिए एक पोस्टमैन बहुत गन्दे कपड़े पहनकर अथवा वह किसी निम्न वर्ण का व्यक्ति आए तो क्या हम

उससे कहेंगे कि आपने कपड़े ठीक नहीं पहने, अथवा आपका वर्ण ठीक नहीं, इसलिए मैं आपके हाथ से डाक नहीं लूंगा? प्रेमी का पत्र लाने वाला चाहे जो भी हो, उस पत्र को ले ही लेना चाहिए। इसी भांति राम के साथ यदि वास्तविक प्रेम होता तो राम कथा कहने वाला कोई भी क्यों न हो, उनके चरणों में सती का सदभाव होना ही चाहिए था। किन्तु दक्ष की कन्या के मन में घमंड है, इसलिए सन्त की सरलता का उन्होंने गलत अर्थ किया।

रामायण के आदि सर्जक तो शिवजी हैं। फिर भी शिवजी ने अगत्स्यजी से प्रार्थना की, तात्! भगवत कथा सुनाइए। अल्प समय पर्यन्त तो अगत्स्यजी के मन में यह विचार हुआ कि मैं इनको क्या कथा सुनाऊं? किन्तु फिर ऐसे भी सोचा कि रामायण के आदि सर्जक यदि मेरे पास कथा सुनते हैं तो मेरी वाणी पवित्र हो जाएगी। ऐसा सोचकर अगत्स्य महाराज ने कथा कहने का निर्णय किया

शिवजी और सती श्रोता रूप में विराजित हुए। मानसकार ने लिखा है कि शिवजी ने अत्यन्त भावपूर्वक कथाश्रवण की। मानस में श्रोता के रूप में सती का नाम नहीं है। कारण यह कि सती जी ने कथा में ध्यान दिया ही नहीं। और जो एकाग्रता से राम कथा श्रवण नहीं करता है, उसका नाम श्रोता के रूप में लिखना नहीं चाहिए, ऐसा तुलसी दास जी को महसूस हुआ। अतः उन्होंने श्रोता में से उनका नाम निकाल दिया।

भक्ति का दान शिव विवाह कथा

कथा पूरी हुई। भगवान शिवजी के मन में भाष हुआ कि मुझे वक्ता को कुछ अर्पण करना चाहिए। इसलिए उन्होंने अगत्स्यजी से पूछा, महाराज, आपको मैं क्या अर्पण करूं? आपने बहुत भाव से कथा सुनाई है। आपका जो उपयोगी हो ऐसा कुछ दे सकूं तो मुझे भी खुशी होगी। आप कुछ मांगिए।'

अगत्स्य महाराज सोचने लगे मुझे एक वस्तु चाहिए। शिवजी देने के लिये तैयार भी हैं, किन्तु मांगूं कैसे?

यहां भारतीय साधू का बहुत सुन्दर गौरव का दर्शन होता है। चाहे मेरे सामने शिव हों फिर भी मैं कैसे मांगू ? इस देश की परम्परा में मांगने की प्रथा थी ही नहीं। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह प्रथा तो कलियुग में आई।

मांगे इससे अच्छा गौरव तो अपने आप मिलने में हैं। अपने आप प्राप्त हो, उससे अधिक आनन्द तो हम प्रतत्न करें और प्राप्त हो, उसमें है। तथा प्रयत्न करें, प्राप्त भी करें और उसको भी इतरजनों को देकर के स्वयं भोग करें तब तो ऋषियों का आनन्द, साधुओं का आनन्द होता है।

अगत्स्यजी विचार में डूब गये। शिवजी ने भले ही कहा किन्तु मैं कैसे मांगू। किन्तु शिवजी ने आग्रह किया तब अगत्स्यजी ने ऐसा सुन्दर मार्ग खोज निकाला कि मांगना भी न पढ़ो और जिसकी भावना है, वह प्राप्त भी हो जाय। उन्होंने कहा, महाराज, आप जब अनुग्रह कर रहे हैं तब कृपा करके भक्ति के बारे में कुछ कहें।' और शिव जी ने अगत्स्यजी को रामभक्ति का दान किया।

रामचरित मानस में नियम के अनुसार भक्ति का दान केवल दो व्यक्ति ही कर सकते है एक तो भगवान शिव और दूसरे सन्त। भगवान शंकर तथा सन्तों की कृपा हो तब ही भक्ति प्राप्त होता है।

भगवान राम की कथा सुनते और भक्ति की चर्चा करते-करते शिवजी अगत्स्यजी के आश्रम में बहुत दिन रुके। बाद में एक दिन शिवजी ने विदा मांगी। जब शिवजी अगत्स्य मुनि के पास आए तब तुलसीदासजी ने 'संगसती जगजननि भवानी' साथ में जगत जननी भवानी हैं ऐसा कहकर बड़ा सम्मान किया था। किन्तु सती ने अगत्स्यजी की सरलता का गलत अर्थ किया, और घमन्ड के कारण कथा भी ध्यान से नहीं सुनो। इसलिए जाने के समय तुलसीदासजी ने 'संग दक्षकुमारी'-साथ में दक्ष की कन्या है, ऐसा लिखा। जगत जननी भवानी नहीं लिखा।

सती का सन्देह,शिव विवाह पावन गाथा

त्रेता युग का समय था। भगवान राम का प्रागट्य हो चुका था। रावण ने सीताजी का अपहरण किया था। राम और लक्षमण सीताजी की तलाश में पंचवटी की भूमि पर भ्रमण कर रहे थे। शिव और पार्वती वहां से निकले।

शिवजी को विचार आया जिसकी कथा सुनने मैं अगत्स्य आश्रम में गया और जिनकी भक्ति का मैंने अगत्स्यजी को दान किया वह भगवान अब लीला कर रहे हैं। उनके दर्शन यहां मार्ग में ही हो जायें तो मेरा कथा-श्रवण फलदायी सिद्ध हो !

याज्ञवल्क्यजी वर्णन करते हैं- हे भरद्वाजजी, भगवान शिवजी ने अकस्मात ही रामजी को देख लिया। रामजी सीताजी को ढूंढ रहे थे। वृक्षों को, मृगों को, पशु-पक्षियों को पूछते जा रहे हैं। पीछे लक्ष्मणजी चल रहे हैं। भगवान के इस विरही रूप का दर्शन करके शिवजी को बहुत आनन्द हुआ। भगवान राम के दर्शन करते ही शिवजी के मुख से शब्द निकल पड़े – 'हे सच्चिदानन्द, हे जगदानन्द, आपकी जय हो!' शिवजी का शरीर पुलकित हो गया। नेत्र सजल हुए।

शिवजी की यह प्रोम-दशा देख करके तथा उन मुख में से निकले 'सच्चिदानन्द' शब्द को सुन के कर सती को सन्देह हुआ। ओहो! इन दोनों में से किसी एक की पत्नी को कोई ले गया लगता है, और उसके विरह में रोते देखकर शिवजी उन्हें सच्चिदानन्द कह रहे हैं।

शिव और सती दोनों एक ही सन्त के पास कथा श्रवण करके आए हैं। दोनों एक साथ राम दर्शन करते हैं। फिर भी शिव राम को पा गए, सती न पा सकी। बुद्धि और अहंकार का पूर्वाग्रह जब मानस में बंध जाता है तब सत्य दर्शन भी बन्द हो जाते हैं।

आकाश के साथ आलाप करते हिमालय को खुली आंखों से देखते हों, किन्तु उस समय अचानक पवन की लहर आए और हमारी आंखों में रज-कण गिरे तो हिमालय दीखना बन्द हो जाएगा।

उसी तरह से हिमालय के समान परमात्मा हमारे सामने खड़ा हो, किन्तु आंख में यदि बुद्धि और अहंकार का तिनका डाल दे तो राम दीखने बन्द हो जाते हैं।

सती को राम नहीं दीखे। दीखे तो भी विरही काम में डूबे दीखे। राम-दर्शन के बाद भी सती के मन में शंका हुई, और उन्होंने शिवजी से प्रश्न किया,' आपने जिसको प्रणाम किया और प्रणाम करने के बाद इतने भावमय बन गए, यह कौन है? "

शिवजी ने कहा,' सती आप अवसर चूक गई। जिनकी कथा सुनने हम अगत्स्य मुनि के आश्रम में गये थे, और जिनकी भक्ति का मैंने अगत्स्यजी को दान किया, यह मेरे इष्टदेव राम स्वयं हैं। ऋषि मुनि जिनका ध्यान करते हैं, उस निराकार, सर्व व्यापक परमात्मा ने व्यक्ति का रूप धारण किया है। समग्र जगत का मालिक वह प्रभु किसी के पुत्र, किसी के भाई, किसी के पति बनकर इस धरती पर अवतरित हुए हैं। सती, जिनकी कथा आपने सुनी यही वह ब्रह्म स्वयं हैं। यह तो लीला करने के लिए अवतरित हुये हैं।

शिवजी ने इतनो स्पष्टता की फिर भी सतो ने कहा,' महाराज मैं उसे ब्रह्म के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती। आप कुछ अधिक भावुक हैं। मैं तो बुद्धि से विचारतो हूं। यदि यह ब्रह्म हैं तो उनकी पत्नी को कौन ले गया, इसकी इन्हें क्यों खबर नहीं? यह तो विकल बने, कामी मानव की तरह पशु-पक्षी और पेड़ों से पूछ रहे हैं कि तुमने सीता को देखा है क्या? और आप तो इन्हें व्यापक कह रहे हैं, यदि यह व्यापक हैं तो भला इनको वियोग किसका?" इस प्रकार सतो ने बौद्धिक प्रश्न किए। बुद्धि ऐसे ही तर्क करती है।

शिवजी ने सती को समझाने के लिए बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उनके उपदेश का कोई असर नहीं हुआ। इतनी बड़ी गीता के गायक श्रीकृष्ण अपने स्वजनों को न समझा सके। और वह सब आपस-आपस में ही संघर्ष कर खतम हो गये। कितनी वेदना हुई होगी उस महापुरुष को! उपदेश अपर नहीं करता, बोध ही असर करता है।

त्रेतायुग जैसे पवित्र समय में और शिवजो जैसे समझाने वाले के होने के बावजूद भी 'राम ब्रह्म है' इसका सती इन्कार करे तो अभी कलयुग में हम चीख-चीखकर कहें कि 'राम ब्रह्म हैं' 'राम' ब्रह्म हैं और शायद आप न भी मानें तो हमें रोने की आवश्यकता नहीं।

सन्तों ने कहा है कि दुनिया में सबको समझाया जा सकता है, किन्तु तीन को समझाना कठिन है।

एक पत्नी को नहीं समझा सकते। आप पत्नी को कितनी भी सलाह दें तो वह कहेगी, हां-हां, बस भी करो, मुझे सब पता है। यह बात दूसरों से करना समझे!"

दूसरा पड़ोसी को नहीं समझा सकते। सारी दुनिया आपके पांव छूयेगी, मगर, पड़ोसी सिर उठा कर देखेगा भी नहीं, वह तो यही मानेगा कि रोज आते-जाते हैं, इनमें क्या है?

तीसरा चचेरों को नहीं समझाया जा सकता। सारा जगत जब आपका सम्मान करता हो तब चचेरे कुछ और ही प्रचार करेंगे-भला आप क्या जानें, बचपन से तो हम साथ में बड़े हुए, भीतर की तो सारी हम ही जानते हैं।

एक नियम है-आपका विरोध आपके निकट के लोग जितना करेंगे उतना दूर वाले नहीं करेंगे। मकर संक्रांति के त्यौहार के दिवस अपने मकान पर चढ़ कर आप पतंग उड़ाना चाहेंगे तो आपकी पतंग आपके पास वाले मकान से ही कटेगी।

ब्रह्म-परीक्षा

राम ब्रह्म हैं, ऐसा सती को समझाने का शिवजी ने बारंबार प्रयत्न किया, फिर भी सती जब नहीं मानी तब शिवजी हंस पड़े और कहा,"देवी मेरे कहने से तुम्हारा संशय दूर न होता हो तो अब एक ही उपाय बाकी रहता है। आप परीक्षा करें। आपके आने तक मैं इस वटवृक्ष के नीचे बैठकर राम नाम जपता हूं। देखना, विवेक से परीक्षा करना, पछताना नहीं पड़े, इसका ध्यान रखना।"

सती गई उन्होंने ऐसा सोचा कि नकली सीता बन के जाऊ। राम ब्रह्म होंगे तो मुझे पहचान लेंगे कि यह मेरी पत्नी नहीं है। यह तो जगज्जननी सती है। और यदि सामान्य मानव होंगे तो मेरा हाथ पकड़कर खुश हो जायेंगे।

सती ने सीता का रूप ग्रहण किया, नकली सीता! तुलसी के दर्शन में इसका बहुत सुन्दर अर्थ है। इन्होंने रामायण में लिखा है कि सीता तो मूर्तिमंत भक्ति हैं, राम तो मूर्तिमंत ज्ञान हैं और लक्ष्मणजी तो मूर्तिमंत वैराग्य हैं।

राम के दर्शन करने के लिए सीता आई, किन्तु नकली भक्ति का रूप लेकर आई। राम-दर्शन तो वास्तविक भक्ति से हो सकते हैं सीताजी का वेश बनाकर, नकली भक्ति का नाटक करके कोई राम दर्शन के लिये चल पड़े तो उसे सुलग ही जाना पड़ेगा सती आई और आकर एकदम रामजीके आगे

चलने लगीं। उन्हें ऐसा था कि राम ब्रह्म होंगे तो अभी पहचान लेंगे, नहीं तो आगे आगे चलती रहूंगी। सच्ची भक्ति ब्रह्म के पीछे चलती है और नकली भक्ति ब्रह्म के आगे कदनी है।

लक्ष्मणजी ने सती को देखा, किन्तु बोले कुछ नहीं। उन्हें लगा–कमाल है जगत की माता को! सीता का रूप लेकर आई! लक्ष्मण सती जी ने शायद सोचा कि भगवान अभी नाटक कर रहे हैं। नाटक में कोई प्रवेश ऐसा भी आता होगा भला हमें क्या खबर? अभी तो मुझे केवल पीछे पीछे ही चलना है। मेरे भाग्य में एक भी संवाद नहीं है। अतः लक्ष्मणजी बिल्कुल मौन रहे।

सती रामजी के आगे-आगे चलती हैं। आगे चलते व्यक्ति को देख सकते हैं, पीछे चलने वाले को नहीं। वैसे भी दिखाने की भक्ति शीघ्र ही दिख जाती है। सती को देखकर रामजी ने प्रणाम किया।

असली भक्ति राम को प्रणाम करती है। नकली भक्ति राम से प्रणाम कराती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि सती, आप सीता नहीं हैं। नहीं तो मुझे आपको भला क्यों प्रणाम करना पड़े, आप ही मुझे प्रणाम करती थीं। किन्तु आप तो जगत की माता हैं, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूं. अथवा तो प्रणाम का अर्थ संत ऐसा करते हैं कि आप परीक्षा करने आई और जो परीक्षा लेने आता है वह तो गुरु माना जाता है। अतः आप गुरु के स्वरूप में आई तो शिष्य के रूप में मेरा कर्तव्य है कि मैं आपको प्रणाम करूं।

रामजी ने प्रणाम तो किया, किन्तु अब संबोधन क्या करना, यह प्रश्न उपस्थित हो गया। पधारिये सीता जी! ऐसे कहना, या पधारिये माता जी! यो कहा जाये? रूप सीता का है। अतः माताजी पधारिये ऐसा कहने पर सीता के रूप को मां का संबोधन होगा, और पधारिये सीताजी ऐसा कहने पर जगत की माता को पत्नी कहना पड़ेगा। दुविधा उत्पन्न हुई।

प्रभु ने बहुत सुन्दर निर्णय लिया। उन्होंने न कहा माताजी और न कहा सीताजी। हाथ जोड़कर पूछा," मेरे पिताजी शंकर कहां है? आप अकेली क्यों?"

बड़ा व्यंग्य था इस वाक्य में। रामजी ने कह दिया-हे विश्वास की धर्मपत्नी, विश्वास को छोड़ कर संशय के जंगल में अकेले नहीं भटकना चाहिये । हे श्रद्धा, तुझे विश्वास के साथ ही रहना चाहिये। यहां सीता अकेले हुई तो उनका भी अपहरण हो गया और आप शिव का संग त्याग कर भटक रही हैं, तो तुम्हारी बुद्धि का भी पतन होगा। इस जंगल में अकेले नहीं घूमना चाहिये, आप अकेली क्यों भ्रमण कर रही हैं? मेरे पिता शंकर कहां हैं?

इतना जब प्रभु ने सती से पूछा तो सती को भरोसा हो गया कि राम ब्रह्म हैं। सती एक शब्द भी बोल नहीं पाई। भाग उठीं। नकली भक्ति को भागना ही पड़ता है। नकली भक्ति बोल सकती है नहीं। असली भक्ति ही बोल सकती है। नहीं तो सती कितनी विदुषी! इतने बुद्धिमान बाप की बेटी कुछ न बोले? किन्तु

नहीं बोल सकी। नकली भक्ति नहीं बोल सकती। वह तो दिखावा ही कर सकती है। असली भक्ति ही बोल सकती है। शबरी भले ही भीलनी थी, अशिक्षित थी, बिल्कुल निरक्षर थी, फिर भी रामके सामने बोलती है!

भगवान रामजी सती को भागते देख कर लखन की ओर देखकर हंसे। बोले,"लखन, माया की प्रबलता तो देख? यह सती जैसी सतो भो माया में लुभाई। ”

भगवान को लगा थोड़ा अपना ऐश्वर्य बताऊं, सत्ती दौड़ रहीं थीं। रामजी ने ऐश्वर्य लीला को और सती के सामने राम, लखन और जानकी तीनों दीख पड़े। सती को आश्चर्य हुआ। ओहो! यह में क्या देख रही हूं? रामजी तो पीछे थे, सोताजी को तो कोई ले गया है, फिर यह तीनों मेरे सामने से कैसे आ रहे हैं? पीछे मुड़ कर देखा तो तीनों पीछे भी चले आ रहे थे।

जहां देखती हैं वहां राम ही दीखते हैं। ब्रह्मादि देवगण राम की सेवा कर रहे हैं। शिवजी भी थे, स्वयं सती भी रामकी सेवा में लगी दृश्यमान हुई। यह सब देखकर सती को चक्कर आने लगे। वह रास्ते में ही बैठ गई। ऐश्वर्य देख नहीं सकीं।

इतना सब देखने के बाद भी वस्तुतः सती कुछ नहीं देख पाई। दक्षकी पुत्री ने राम का ऐश्वर्य देखा फिर भी वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकी। उतना ही नहीं, मानसकार कहते हैं कि सती के हृदय में एक संताप प्रकट हुआ कि, मैंने शिवजी का कहना माना नहीं। मैंने अज्ञानता में राम के लिए शंका की। अब मैं शिवजी को क्या जवाब दूंगो? इस प्रकार सती की वेदना चालू हो गई। नियम तो यह है कि रामदर्शन के बाद शांति प्राप्त होनी चाहिए। यहां राम दर्शन के बाद सती को संताप हुआ, वेदना हुई। रामदर्शन के बाद स्वभाव निर्भय बनना चाहिए, इसके बदले सती भयभीत बनी हैं।

सती का त्याग

सती को संताप हुआ है। शिवजी को मैं क्या जवाब दूंगी, ऐसा एक भय, ऐसा एक संताप लेकर सती शिवजी के पास आई। शिवजी तो हरि-स्मरण कर रहे थे। सती सन्मुख आकर खड़ी हुई। भगवान शिवजी ने आंखें खोलीं हंसते हंसते पूछा, "हे देवी, आपने किस प्रकार परीक्षा की वह सब सत्य सत्य कहो।"

शिवजी ने सत्य के ऊपर वजन दिया। शिवजी के मन में शंका हो गई कि शायद सती झूठ बोले। सती ने कहा," महाराज, मैंने कोई परीक्षा नहीं की, मैंने तो आपके जैसे ही प्रणाम किया। "सती झूठ बोलीं, एकदम झूठ बोलीं। इससे एक बात सिद्ध होती है कि एक भूल अनेक भूलों का कारण बनती है। इसीलिए हमारे महापुरुष कहते हैं कि कभी कोई भूल हो जाए तो आत्मनिवेदन करो, भूल को स्वीकार कर लो।

सती ने एक भूल तो यह को कि उन्होंने अगस्त्य ऋषि की सरलता का गलत अर्थ किया। सती ने दूसरी भूल यह की कि उन्होंने भगवत कथा ध्यान से नहीं सुनी। सती की तीसरी भूल-रामदर्शन करके वंदन नहीं किया। सती की चौथो भूल-अपने पति के समझाने पर भी नहीं मानीं। सती की पांचवीं भूल–भगवान की परीक्षा करने गई। सती की छठी भूल-सीता का रूप धारण किया और सातवीं भूल-अपने सुहाग के सामने झूठ बोलीं।

शिवजो समझ गये कि यह कुछ छुपा रही हैं। झूठ बोलने वाला, झूठा करने वाला और गलत तरीके से जीवन जीने वाला कभी निर्भय होता ही नहीं। सत्य ही निर्भय हो सकता है। सुती भयभीत हैं।

शिवजी ने ध्यान लगाकर देखा तो सती ने जो कुछ भी किया था सब कुछ दीख गया। सती सीता का रूप लेकर गई, लक्ष्मणजी कुछ बोले नहीं, सती आगे आगे चलने लगीं, रामजो ने प्रणाम किया, 'मेरे पिताजी कहां है? ऐसा प्रश्न पूछा, सती ने कोई जवाब नहीं दिया, रामने ऐश्वर्य बताया, सतो आंखें बंद करके बैठ गई, आंखें खोल कर उन्होंने कुछ देखा नहीं इन तमाम घटनाओं को शिवजी ने ध्यान में देख लिया।

ध्यान में यह सब देखने के बाद शंकर भगवान को लगा कि, सती मेरे पास झूठ बोली है उसका तो हर्ज नहीं, किन्तु उन्होंने सीता का रूप धारण किया। सीता तो मेरी माता है। अब यदि सती के साथ गृहस्थाश्रम रखता हूं तो कैसे।किन्तु सती के त्याग का निर्णय उन्होंने अपने आप नहीं किया, प्रभु के भरोसे छोड़ दिया। उन्होंने प्रार्थना की कि, हे भगवान तू ही अन्दर से प्रेरणा दे। मैं कोई त्याग का निर्णय करूंगा तो उसमें मेरा 'हूं' जीवित रह जायेगा, अतः तू प्रेरणा दे।

संतों के सर्व निर्णय अन्दर से ही सहज रूप में प्रकटते हैं। इसलिए प्रेरणा हेतु शिवजी राम का स्मरण करने लगे। और जहां स्मरण किया वहां ही हृदय में से एक आवाज उठी कि सती का यह शरीर रहेगा तब तक सती मेरे मन में मां के समान मान जायेंगी। उन्होंने सीता का रूप धारण किया। इसलिये इनके साथ गृहस्थाश्रम नहीं कर सकते। बस, निर्णय हो गया। आकाशवाणी हुई- धन्य है महाराज ! आपके सिवाय ऐसा निर्णय कौन कर सकता है?

सती ने आकाशवाणी सुनी। सती के मन में संदेह तो था ही। और उसमें शिवजी के निर्णय के ऊपर आकाशवाणी ने धन्यवाद व्यक्त किया। इसलिए सती ने शिवजी से पूछा- "भगवन्, आपने ऐसी कौन सी प्रतिज्ञा की है कि जिसे आकाशवाणी द्वारा प्रशंसा प्राप्त हुई ? शिवजी कितने दयालु! उन्हें लगा – मैंने सती का त्याग किया है, किन्तु यदि मैं स्वमुख से कहूंगा कि सती का त्याग किया है, तो वह दुखी हो जायेंगी। अतः मैं इन्हें नहीं कहूंगा। अपने व्यवहार से ही मैं उन्हें कैलाश जाकर बता दूंगा।

इसलिए शिवजी विषयान्तर करने के लिए विभिन्न ऐतिहासिक कथायें कहते कैलास पहुंचे और कैलास पहुंचते ही मृगचर्म बिछाकर ध्यान में बैठ गए। शिवजी के इस व्यवहार से सती समझ गई कि मेरा त्याग हो गया है।

सती अकेली हो गई शिव-वियोग असह्य हो गया। शरीर अस्थि-पिंजर समान बन गया। बहुत पश्चाताप हुआ है। परमात्मा की स्तुति करती हैं। "आप दीन दयालु हैं मेरी वेदना को दूर करें। या तो शिव के साथ मेरा समाधान करादें" अथवा शिव-विरह में मेरी मृत्यु हो जाए ऐसी कृपा करें।

शिवजी और सती को अलग हुए वर्षों बीत गए, एक दिन अचानक शिवजी ने समाधि तोड़ी। समाधि में से मुक्त हुए शिवजी राम! राम! ऐसा बोलने लगे। 'राम' शब्द सुनते ही सती को विदित हुआ कि जगत्पति जागे हैं। पश्चाताप से खिन्न मानस के साथ वर्षों के बाद सती शिवजी के पास गई। शिवजी ने सन्मुख में आसन दिया, और कहा, 'बैठिए' । जो सती बायों ओर बैठने को अधिकारी थीं, वह सामने बैठ गयीं। शिवजी जो लगा -सती बहुत दुःखी है। उन्हें उस दुःख से मुक्त करने के लिए क्या करूं? सती का दुःख विस्मरित हो इस लिए उन्हें आनन्द प्राप्त हो ऐसी कथा। शिवजी कहने लगे।

दक्ष का यज्ञ

जैसे सती को संबोधन किया उसी समय एक घटना घटी। सती के पिता महाराज दक्ष को ब्रह्माजी ने सर्व प्रकार से सुयोग्य जान करके प्रजा पतिनायक की उपाधि प्रदान को तुलसीदास जी ने मानस में लिखा है:-

नहि कोउ अस जनमा जग माहीं ।

प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥

जगत में ऐसा कोई नहीं जन्मा है कि जिसको प्रभुता प्राप्त होने के बाद अहंकार न हुआ हो।

सत्कार्य करने से अहंकार नहीं मिटता, उससे तो कभी-कभी वह अधिक मजबूत बनता है। सद्गुण भी बहुत एकत्रित हो जायें तब भी अहंकार नहीं मिटता। कभी-कभी तो सद्गुणों का अहंकार भी हो जाता है। अहंकार तो केवल जा सकता है राम शरणगति से, प्रभु की अधीनता से।

सती के पिता महाराज दक्ष को इतनी बड़ी उपाधि प्राप्त हो गई तो अहंकार भी बढ़ गया। और अहंकार के आगमन से उन्होंने एक यज्ञ का आयोजन किया।

भूतकाल में एक बार दक्ष महाराज का ब्रह्मा की सभा में आगमन हुआ था। तब सब ने खड़े होकर उनको सम्मान दिया था, किन्तु शिवजी ध्यान में थे। अतः कोई आया है, यह उन्हें ज्ञात नहीं हुआ, इसलिए वह एकदम खड़े नहीं हो सके। दक्ष को इस कारण बुरा लगा। दामाद ने सम्मान नहीं दिया इस बात का उसके मन में बहुत समय से दुःख था। शिवजी का अपमान करने का एक मौका वह ढूंढ रहे थे,

और इसी कारण उन्होंने एक यज्ञ का आयोजन किया। इसमें उन्होंने तमाम ऋषिमुनियों तथा देवताओं को निमन्त्रण दिया, मात्र दामाद को आमंत्रित नहीं किया।

संतों ने तो कहा है कि देवताओं को दक्ष ने निमन्त्रण पत्र भेजा तब उसमें विशेष सूचना यह लिखी गई थी कि, रास्ता लंबा हो जाये तो चिंता नहीं, किन्तु आप अपने देव विमानों को ठीक कैलास के ऊपर से हो लेकर के आना, जिससे शिवजी को पता चले कि मेरे स्वसुर के यहां बड़ा उत्सव है, सब जा रहे हैं, और मुझे निमन्त्रण नहीं। इस प्रकार दक्ष ने भी सर्व देवताओं को निमंत्रित किया। वह सब अपने विमानों को सजा करके कैलास के ऊपर से निकलने लगे। विमानों की आवाज हुई।

सती का ध्यान कथा में से छूटकर विमानों में गया। उन्होंने शिवजी से प्रश्न किया, "महाराज, कथा बाद में कहना। यह सब विमान कहां जा रहे हैं, यह तो कहें। किसके यहां इतना बड़ा अवसर है? सब देवतागण जा रहे हैं और हमें निमन्त्रण नहीं है? सती का ध्यान कथा में लगा ही नहीं। लगा होता तो अगत्स्य मुनि को कथा में लगा होता, किन्तु वह लगा ही नहीं। उनका ध्यान तो विमान में गया। शिवजो ने कहा, "हमें निमन्त्रण नहीं है इसलिए हमें इसका विचार नहीं करना चाहिए। यह जहां जाते हैं उन्हें वहां जाने दो।"

शिवजी को यों था कि मैं सत्य कहूंगा तो सती का मन दुःखी होगा। किन्तु सती जब मानी नहीं,तब शिवजी ने कहा,' आपके पिताजी बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। मेरे साथ उनका मन दुःखी हो गया है, इसी लिए आप उनकी पुत्री होते हुए भी आपको निमन्त्रण नहीं है। वैर का बदला लेने के लिए, हमें बताने के लिए ही यह यज्ञ हो रहा है। आपके पिताजी सत्कार्य कर रहे हैं, किन्तु उसमें सद्भाव नहीं हैं। यह तो केवल जगत को दिखाने के लिए हो सत्कार्य है।

जिस सत्कार्य में शिव को स्थान प्राप्त न हो, जिस सत्कार्य में कल्याणकारी भावना न हो वह कार्य सत्कार्य नहीं है। शिवजी ने कहा ' देवी , मैं समझता हूं कि माता-पिता के यहां सन्तान बिना आमन्त्रण के जा सकती है। मित्र के घर भी मित्र बिना निमन्त्रण के जा सकता है, गुरु के यहां शिष्य बिना निमन्त्रण के जा सकता है। फिर भी सामने वाला व्यक्ति हमारे आगमन को पसन्द न करें तो हमें उन के यहां नहीं जाना चाहिए।'

सती ने जिद की, "महाराज, मेरे पिताजी के यहां प्रसंग है। आप न जायें तो कुछ नहीं किन्तु मुझे जाने दें। पिता के यहां उत्सव हो तो पुत्री का मन वहां जाने के लिये उत्सुक हो, यह स्वाभाविक है। फिर, सती की दृष्टि दूसरी भी थी कि शिवजी ने मेरा त्याग किया है। इस बहाने अपने माता पिता से भेंट करूंगी तो दुःख कुछ कम होगा। जब मानव के ऊपर दुःख आता है तब वह सुख के लिए लालायित हो जाता है। मैं यहां जाऊं तो मुझे सुख मिलेगा, मैं वहां जाऊ तो मुझे सुख मिलेगा।

मैं इससे मिलूं तो मुझे कुछ फायदा होगा- इस प्रकार वह तड़फता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसका शिव रूठता है, वह कहीं भी जाये,उसे सुख नहीं मिलता। शिवजी ने जाने के लिए ना कहा

किन्तु सती मानी नहीं है अतः शिवजी ने अपने दो गणों को साथ में ले जाने के लिए तैयार किया और कहा,'आप सती के साथ जायें। उनके पिता के यहां यज्ञ है, यज्ञ की पूर्णाहुति होने पर इन्हें सम्हालकर ले आना"

इस ओर दक्ष ने पुत्री का सम्मान नहीं करने के लिए सबको कड़ा आदेश दे दिया। पुराण कथा इस प्रकार है कि दक्ष ने ऐसा कहा था कि मेरो पुत्रो सती यज्ञ में आयेगी और यदि कोई उस का सम्मान करेगा तो उसका वध करूंगा। पिता इतनी हद तक रूठे हुये थे। इसलिए सती के वहां जाने पर भी किसी ने बात नहीं की। क्योंकि सब को मौत का भय है। पिताजी ने मुंह फेर लिया। बहनें भला-बुरा कहती मिलीं, तुम्हारे पति अभी भी भस्म लगाते हैं, या आजकल बन्द किया है? अब कपड़े पहनना चालू किया या ऐसे हीं भटकते हैं? मकान-बकान बनाया या अभी भी शमशान में ही रहते हो?

ऐसे व्यंग्य वाक्य कहकर बहनें उसे सताने लगीं। केवल माता ही प्रोम से मिलीं। सती ने कुछ राहत अनुभव किया। यज्ञ मण्डप में जाकर सती ने देखा कि शिवजी का स्थान नहीं था। सती ने व्याकुल होकर सभा को सूचना दी, 'हे सभाषदो, 'हे ऋषिमुनियों, इस सभा में जिन्होंने शिवजी की निन्दा की है वे सब गुनहगार हैं। 'यहां ऋषिमुनियों को भी दोषी बताया है। क्योंकि उनको दक्ष को यह तो कहना चाहिए था कि शिवजी का अपमान करके यज्ञ नहीं हो सकता। कदाचित दक्ष के वैभव को देखकर ऋषिमुनि भी थोड़े ललचा गए होंगे। हो सकता है कि दक्ष ने दक्षिणा अधिक देने का लालच दिया हो। लोभ लालच की बीमारी उस समय भी होगी।

सती से शिवजी का अपमान सहन नहीं हुआ। उन्होंने रौद्र स्वरूप धारण किया। अंगूठे में से अग्नि प्रकट हुई और यज्ञ मण्डप में ही वह जलकर भस्म हो गई. मण्डन में हाहाकार मच गया। शिवगण यज्ञ का विध्वंस करने लगे। भगवान शिव जी को कैलाश पर समाचार प्राप्त हुये। उन्होंने वीरभद्र नाम के गण को भेजा। वीरभद्र ने यज्ञ का ' सम्पूर्ण नांश किया। दक्ष की दुर्गति हुई। जिस सत्कार्य में शिव का कल्याण का स्थान नहीं होता है, उस सत्कार्य का नाश होता है। सत्कार्य मानवता के लिए होना चाहिए। जगत के कल्याण के लिए होना चाहिए। दक्ष का यह यज्ञ अहंकार पुष्टि के लिये था। अतः उसको दुर्गति हुई।

पार्वती का प्रादुर्भाव

यज्ञ मण्डप में भस्म होते समय सती ने ईश्वर से जन्मजन्मान्तर में भी शिवपति प्राप्त हों, ऐसा वरदान मांगा था। इसलिए उनका दूसरा जन्म हिमाचल राजा के यहां पुत्री स्वरूप में हुआ। सूत्र के रूप में देखें तो दक्ष की कन्या के रूप में सती का जीवन समाप्त और हिमालय जैसी अडिग स्थिरता में से एक नया श्रद्धा का जन्म हुआ। हिमालय और मैना बड़ी उम्र में कन्यारत्न प्राप्त होने से अपने जीवन को धन्य मानते हैं। मानस में ऐसा वर्णन है कि भवानी के जन्म के बाद हिमालय की समग्र शोभा बदल गई।

उसकी स्मृति बढ़ी, सब नदियों में अमृत समान जल बहने लगा। मणियों की खाने निकलने लगीं। किसी भी व्यक्ति के जीवन में पहले या बाद में सच्ची श्रद्धा का जन्म होने के बाद में ही जीवन दिव्य बनता है। दिन दिन पार्वती जी बड़ी होने लगी। एक दिन अचानक नारदजी हिमालय के यहां मेहमान बने। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति के जीवन में श्रद्धा का प्राकट्य होता है और क्रमशः जब यह श्रद्धा दृढ होती है, तो फिर किसी सन्त को बुलाना नहीं पड़ता, सन्त अपने आप द्वार पर आकर खड़े रहते हैं।

हिमाचल और मैना ने नारदजी का सत्कार किया। मैना ने पुत्री को बुलाकर नारदजी के चरणों वंदन करवाया। नारद जी ने आशीर्वाद दिया। हिमाचल ने हाथ जोड़कर नारदजी से विनती की, "महाराज, आप सर्वज्ञ हैं। आपकी गति सर्वत्र है। हमारे यहां बड़ी उम्र में कन्यारत्न को प्राप्ति हुई है। आप इसका भाग्य कहें। इसका ज्योतिष देखकर बतायें भविष्य कैसा है?"

हिमाचल की विनती को सम्मानित करते हुए नारदजी ने भवानी की हस्तरेखाओं को देखा और कहा, "हिमाचल, तुम बड़े भाग्यवान हो। तुम्हारी कन्या तुम्हें यश और कीर्ति दोनों दिलायेगो। इतना ही नहीं, उसका सौभाग्य अखण्ड रहेगा। दुनिया इसकी सती के रूप में पूजा करेगी। सर्व प्रकार से ज्योतिष देखते हुये नारदजी ने अंत में कहा, आपकी कन्या का जीवन दिव्य बनेगा। इसके हाथ की एक रेखा ठीक नहीं है । इसे पति कैसा प्राप्त होगा वह सुनो।"

हिमाचल ने कहा 'महाराज, माता-पिता के लिए कन्या को जीवन में पति कैसा प्राप्त होगा यह आवश्यक बात होती है। कृपया आप जल्दी बतायें, मेरी बेटी को पति कैसा प्राप्त होगा? "नारदजी ने कहा, "आपकी कन्या को ऐसा पति प्राप्त होगा कि जो अमान्य होगा, उसके माता-पिता नहीं होंगे, वह शमशान में भटकता होगा भस्म का लेप करेगा, संसार में उसके कोई दोस्त या दुश्मन नहीं होंगे, भिक्षा मांगकर वह पेट भरता होगा।"

नारद की इस बात को सुनकर माता-पिता की आंखों में आंसू आ गये। उन्हें लगा इतनी सुन्दर कन्या का ऐसा पति? मानस में तो ऐसा लिखा है कि इस बात को सुनकर भगवतो की आंखों में भी आँसू आ गये, किन्तु वह हर्ष के आंसू थे। क्योंकि, उसे भरोसा हो गया कि नारदजी ने जिसका वर्णन किया है वह भगवान शिव के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता।' मुझे जो प्राप्त करना है वह तत्व मिलेगा' यह जान करके उसे बहुत आनन्द हुआ।

हिमाचल ने हाथ जोड़कर नारदजी से विनती की, "प्रभु, आप कहें इतने अनुष्ठान करूंगा, आप कहें इतने यज्ञ कराऊंगा, किन्तु मेरी विटिया को जैसा आपने वर्णन किया है, वैसा पति नहीं मिलना चाहिये। आप कुछ परिवर्तन करें.आप तो समर्थ हैं? "नारदजी ने कहा, "हिमाचल, मानव के भाग्य में जो लेख लिखा होगा है उसे कोई मिटा नहीं सकता। आपको पुत्री के भाग्य में जो पति है वह उसे अवश्य मिलेगा, और दुल्हे के जो दोष मैंने वर्णन किये हैं, यह दोष मेरे अनुमान के अनुसार शिव ही हैं। और शिव तो समर्थ व्यक्ति हैं, महान विभूत हैं।

यदि आपकी पुत्रो को शिव प्राप्त होते हैं तो वह तमाम दोषों का परिवर्तन गुणों में हो जायेगा। किन्तु हिमाचल, एक बात को कहूं। शिव जी को प्राप्त करने के लिए कठिन आराधना करनी पड़ेगी। आपकी पुत्री इतनी छोटी उम्र में यदि साधना का मार्ग स्वीकार करे तो उसे शिव अवश्य प्राप्त होगे, और आप धन्य हो जायेंगे। मेरे आशीर्वाद हैं। भगवान उसकी मनोकामना पूर्ण करेंगे नारदजी की रीत बड़ी ही सुन्दर है।

नारदजो चाहते तो ऐसा कह सकते थे कि आपकी पुत्री को शिव प्राप्त हों इसलिए मैं अनुष्ठान करू, जप करूं वगैरह वगैरह। किन्तु उन्होंने तो ऐसा कहा नहीं। उन्होंने तो कहा कि साधना तो आपकी कन्या को स्वयं हो करनी पड़ेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी सिद्धि के लिए साधना तो व्यक्ति को स्वयं ही करनी पड़ेगी। संत पुरुष तो आशीर्वाद दे सकते हैं। साधना की गति को अधिक तेज करने के लिए धक्का मार सकते हैं!

भगवती की साधना ,शिव विवाह की कथा

आशीर्वाद देकर नारदजी बिदा हुये। हिमाचल और मैना अकेले रहे। अब क्या करना, इसका विचार करने लगे। मैना ने हिमाचल को साफ शब्दों में कह दिया, "महाराज वर-घर यह दोनों जो हमारी कन्या के अनुकूल होंगे वही मैं अपनी कन्या दूंगी, अन्यथा मैं कन्या नहीं दूंगी कल सबेरे दुनिया टीका तो हमारी ही करेगी, कैसे भी है तो पत्थर की पुत्री। उसके बाप की इतनी बुद्धि! बेटी के कल्याण के बारे में सोच भी नहीं पाये!

हिमाचल ने कहा,"मैना, तेरी बात तो सही है, किन्तु नारदजी के वचन मिथ्या तो नहीं होंगे। हमें अपनी पुत्री से तप करने के लिए कहना ही पड़ेगा।" सारी रात चर्चा चली। दूसरे दिन सवेरे मैना अपनी कन्या को तप करने की सूचना देने के लिये गयी, किन्तु कुछ भी बोल नहीं पाई। भवानी से स्वयं आकर कहा, "मां, आज प्रातःकाल मुझे एक स्वप्न आया। उसमें मुझे गौर वर्ण वाला ब्राह्मण दीखा। उसने मुझे कहा कि भवानी, तू तप करने चली जा। बार-बार वह ब्राह्मण मुझे साधना करने के लिए कहता रहा। मां, मैं तप करने जाऊ?"

माता-पिता ने पुत्री को आज्ञा दे दी, भवानी ने श्वेत वस्त्र धारण किये और साधना का पंथ ग्रहण किया। इससे माता पिता को दुःख अवश्य हुआ किन्तु वेदशिरा के नाम एक संत ने आकर हिमाचल से कहा कि आपकी पुत्री केवल आपकी कन्या नहीं हैं, तो साक्षात् जगदम्बा है। शिव को प्राप्त करने जा रही है। उसका मार्ग मंगलमय है। आप निश्चित रहें। माता-पिता शान्त रहें।

भवानी ने अनेक वर्ष तप किया। कुछ समय तक कंदमूल पर रहीं। उसके बाद पाधता में वृद्धि हुई कि कंदमूल छूट गये और केवल जलपान करके साधना चालू रखा। शरीर कृश होने लगा। इस साधना के

समय अनेक प्रकार के प्रलोभन उनके सामने आये, किन्तु वह अपनी बात पर अडिग रहीं कुछ समय के बाद भवानी ने जलपान भी छोड़ दिया।

एक दिन आकाश से आकाशवाणी हुई- हे हिमाचल को पुत्री, आपका मनोरथ पूर्ण होगा। आपको भगवान् शिव पति रूप में अवश्य प्राप्त होंगे। यह हमारा वचन है। और आपको सप्तर्षि आकर मिले तो आप हमारी बात को सत्य मानना। सप्तऋषि मिलने के बाद आपके पिताजी आपको वापस बुलायें तो हठ छोड़ करके घर वापस चली जाना। अब तप करने की आवश्यकता नहीं

हरिहर का मिलन

आकाशवाणी ने सती को आशीर्वाद दिया। इस ओर शिवजी की स्थिति क्या हुई यह बाबाजी बताते हैं। तुलसीदास जी के दर्शन के अनुसार विश्वास के बिना श्रद्धा अनुपयोगी होती है, उसे भटकना पड़ता है। अथवा अन्त में जल जाना पड़ता है और श्रद्धा के बगैर विश्वास को भी भटकना पड़ता है। इसलिए शिवजी हमेशा परिभ्रमण करते दिखाई देते हैं। किसी स्थान पर महात्माओं के साथ भक्ति की चर्चा करते हैं, तो किसी स्थान पर रामगुण सुनते हैं।

भवानी के विरह में इधर-उधर बहुत भटकने के बाद शिवजी को महसूस हुआ कि अब मुझे एक स्थान पर बैठकर प्रभु का ध्यान करना चाहिये। वह भगवान का भजन करने बैठ गये। शिवजी का नियम और प्रेम देखकर भगवान रामजी प्रकट हुए। शिवजी ने आंख खोलकर देखा तो हरिहर का सुन्दर मिलन हुआ। शिवजी ने भगवान रामजी की स्तुति की। रामजी ने कहा, "महाराज, आज मैं बरदान ने देने नहीं आया, याचना करने आया हूं।"

कहिये महाराज, मैं आपको क्या दे सकता हुं? "शिवजो ने कहा!"

रामजी ने कहा, "मुझे एक वचन चाहिए। आपने जिस सती का त्याग किया था वह तो दक्ष के यज्ञ में जल गई। उनका नया जन्म हिमाचल के यहाँ पुत्री रूप हुआ है। आपकी पुनः कठिन आराधना की है। मैंने उसे आकाशवाणी द्वारा बचन दिया है कि तुम्हें शिव प्राप्ति होगी। मेरे इस बचन को पूरा करने के लिए हे भोलेनाथ, हिमाचल महाराज जब आपको निमन्त्रण भेजें तब आप किसी भी प्रकार की हठ किये बिना भवानी का पाणिग्रहण करने जाना। आपसे इतनी याचना है।"

अनेक बार संसार में योगियों से परमात्मा स्वयं विवाह का आग्रह करते हैं। जब प्रभू को यह महसूस होता है कि संसार में कोई महान संतान की, धर्मधुरम्धर की, धर्म प्रवर्तक को, संस्कृति के प्रचंड आधार स्तंभ की आवश्यकता है तब परमात्मा योगियों को गृहस्थ बनाते हैं। प्रारंभ में शिवजी ने थोड़ी नाराजगी बताई और कहा, "महाराज, अब विवाह की इच्छा नहीं है। एक बार विवाह करके संसार को देख लिया।

अब फिर से गृहस्थ बनना नहीं चाहता।" किन्तु राम जी ने शिवजी को आग्रह करके कहा कि, "आपको विवाह करना ही पड़ेगा, यह मेरा आदेश है।"

तब शिवजी ने कहा, "महाराज, आप स्वामी हैं, मैं सेवक हूं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य।"

भगवान ने कहा, "नहीं, मेरी आज्ञा शिरोधार्य नहीं, मेरी आज्ञा को हृदय में धारण करो। मेरी आज्ञा आप मस्तक पर धारण कर लेंगे तो मुझे भय यह है कि, आपकी जटा में से गंगा बहती है। आज्ञा को जटा में रख कर, आप समाधि में बैठ गए और आज्ञा गंगा के प्रवाह में बह गई तो मुझे वापस आना पड़ेगा।" रामजी के कथन में शिवजी को सूचना मिली है कि भाव भक्ति के प्रवाह में मेरे दिए गए सूत्र को कहीं भूल नहीं जान ।

शिवजी ने कहा, "ठीक है महाराज, मैं विवाह करूंगा।" और भगवान अन्तर्हित हुये।

इतने में सप्तर्षियों का आगमन हुआ। शिवजी ने सप्तपियों की विनती की कि आप हिमाचल प्रदेश में जाकर पार्वतीजी की परीक्षा करके आयें। मुझे उसको स्वीकार करना है, किन्तु थोड़ी प्रेम-परीक्षा हो, तब बाद में स्वीकार करूं। शिवजी जीव को स्वीकार करते हैं, किन्तु उस की योग्यता हुई या नहीं इसका परीक्षा संतों के द्वारा करा लेते हैं।

सप्तर्षियों के आशीर्वाद

हिमाचल प्रदेश में जहां भवानी तप करती थीं वहां सप्तर्षियों का आगमन हुआ। जैसे किसी ने तपस्विती की मूर्ति तराश के बैठाई हो ऐसी सुन्दर पार्वतीजी के दर्शन उन्होंने किये। पार्वतीजी ने प्रणाम किया। सप्तर्षियों ने पूछा, “ बटी, इतनी छोटी उम्र में इतनी कठिन साधना करके तुम क्या चाहती हो? हमें सत्य-सत्य कहो।”

भवानी बहुत सुन्दर जवाब देतो हैं, "महात्मागण, मैं क्यों तप करती हूं इसका स्पष्ट कारण बताऊंगी तो आप मेरी हँसी करेंगे। आप कहेंगे कि पहाड़ की पुत्री की बुद्धि कितनी? पत्थर की संतान पत्थर के समान ही होती है न?”

सप्तर्षियों ने कहा, "नहीं बेटी, हम ऐसा नहीं कहेंगे। तू सच्चा कारण बता।"

भवानी ने कहा, "संसार में जो वस्तु अत्यन्त दुर्लभ है, मैं उसे प्राप्त करना चाहती हूं। निष्काम, निविकार, निरपेक्ष, निर्दम्भ ऐसे भगवान सदाशिव को में चाहती हूं। शिवजी मेरे पति बनें मैं उनकी पत्नि बनूं – यही मेरी इच्छा है।"

सती की बात सुनकर सप्तर्षि मुक्त हास्य करने लगे। बोले, "बेटी, नाररजी ने जिन-जिन को उपदेश दिया है, वह सारे घर छोड़कर भिखारी बन गये हैं। वह खुद अकेले हैं, और सबको अकेला बना देना चाहते हैं। उनका उपदेश कभी नहीं लेना चाहिए! और, शिवजी कैसे हैं? उसकी तुझे कोई खबर नहीं बेटी! भीख मांगकर पेट भरते हैं, शमशान में भटकते हैं, शरीर पर भस्म रमाते हैं और खुले आकाश के नीचे पड़े रहते हैं। पहली बार दक्ष के यहां उनका विवाह हुआ था। दक्ष की कन्या ने कोई गलती कर दी, बस उन्होंने त्याग कर दिया. अरे! वह बिचारी जल मरी।

उनके साथ विवाह करके तू क्या सुख भोगेगी बेटी? तू कहे तो बेटी हम चौदह ब्रह्मांड के अधिपति सर्वगुणसम्पन्न और सर्वांग सुन्दर भगवान् विष्णु के साथ तेरा विवाह करा सकते हैं।" भवानी ने कहा, "महाराज, आपकी सब बात ठीक हैं, किन्तु नारदजी मिले उसके पहले यदि आप का मिलन होता तो मैं अवश्य आपकी बात मानकर विष्णु की आराधना करती। परन्तु नारदजी मेर गुरु हैं और गुरु वचन में जिसे निष्ठा न हो उसे स्वप्न में भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती।"

मतंग ऋषि शबरी से कहते हैं, "शबरी, मेरा प्रारब्ध पूरा हो रहा है। मैं आश्रम छोड़ कर जा रहा हूं। ईश्वर के निर्णय को रोक नहीं सकते। किन्तु शबरी, तू कुटिया में ही बैठना। तेरे आंगन में एक बार राम आयेंगे। यह मेरा वचन है।" गुरु की यह बात सुनकर शबरी की आंखों में आंसू छलक उठे।

कथा में ऐसा कहीं नहीं प्राप्त होता कि शबरी ने कभी भी मतंग को पूछा हो कि रामजी कब आयेंगे। उसने तो मान लिया कि गुरुदेव ने कहा हैं, रामजी आयेंगे, इसलिए जरूर आयेंगे। गुरु के वचन के ऊपर की इस निष्ठा के कारण हो जहां सब ऋषिमुनि रामजा के सम्मान हेतु तैयार थे, वहां उनकी कुटियाओं को एक ओर छोड़कर रामजी के चरण सीधे शबरी की कुटिया की ओर चल पड़े।

गुरुनिष्ठा है। गुरुनिष्ठा के कारण ही द्रोणाचार्य की मूर्ति को ध्यान में रखकर अर्जुन को भी पराजित कर सके ऐसा एक नरवीर पैदा हो सका। इतनी गुरुनिष्ठा है इस देश में। भवानी ने कहा, नारद मेरे गुरु है और मैं उनकी शिष्या हूं। गुरु के वचन मैं नही छोड़ सकती।

एक और बात भी आपको कह देती हूं कि करोड़ों जन्म धारण करने के बाद भी यदि विवाह करुँगी तो सदाशिव से ही करूंगी। "पार्वतीजी की इस घोषणा को सुनकर सप्तऋषियों ने धन्यवाद का स्वर उच्चारण किया, "हिमाचल कन्या, धन्य है तेरी श्रद्धा को बेटी, अब हमारी एक आज्ञा तू मान। तेरे पिता जब तुझे बुलायें तब हठ छोड़कर तू घर वापस चली जाना। अब तुझे आगे साधना करने की आवश्यकता नहीं है। तुझें शिव अवश्य प्राप्त होंगे।"

सप्तर्षियों ने वहां से हिमाचल के पास जाकर सूचना दी अपनी पुत्री को अब बुला लें। हिमाचल शोभा यात्रा लेकर गये और पुत्री को घर ले आये। हिमाचल के पास से सप्तर्षि पुनः भगवान शिव जी के पास गये और पार्वती के प्रेम की कथा वर्णन करते हुए कहा कि 'शिवजी, भवानी का प्रेम शब्दों में वर्णन नहीं

हो सकता। उसने अपना जीवन आपको समर्पित कर दिया है।" ऋषियों ने पार्वतीजो की प्रेम-गाथा इतने सरस स्वरूप में वर्णन की कि उसको सुनते-सुनते हीं शिव जी की समाधि लग गई। प्रेमभक्ति में डूबे हुए साधकों की समाधि सहज में ही लग जाती है।

काम दहन

हुआ ऐसा कि शिवजी समाधिस्थ हुए और संसार तारकासुर नाम का एक राक्षस उत्पन्न हो गया। वह समाज को इतना परेशान करने लगा कि देवता भी उससे तंग आ गए। उन्होंने ब्रह्माजी से फरियाद की मृत्यु कैसे की और कहा, 'महाराज तारकासुर हो सकती है? "ब्रह्माजी ने कहा' उसका एक ही उपाय है। शिव-पार्वती का विवाह हो और उनके दाम्पत्य जीवन से पुत्र जन्म हो तो वह तारकासुर को मार सकता है। इसके अलावा तारकासुर की मृत्यु सम्भव नहीं है!'

देवताओं ने कहा 'महाराज समाचार तो यह है कि शिवजी समाधि में हैं।' ब्रह्माजी ने कहा' हां मुझे पता है किन्तु आप एक काम करें आप कामदेव को शिवजी के पास भेजो और उनकी समाधि तुड़ाओं उनकी शादी करा देने का दायत्व मेरा है। 'देवगण तैयार हो गए। किसी की भी समाधि तोड़ने का काम तो देवताओं की रुचि का कार्य है। साधना के मार्ग में आसुरी तत्व ही विक्षेप करते हैं। तमाम इन्द्रियों के द्वार पर देवता लोग स्थान पकड़ कर बैठे हैं और साधक का ज्ञानदीप कब बुझ जाय इसकी कोशिश में यह रहते हैं।

तुलसीदास जी वर्णन करते हैं कि तमाम देवताओं ने कामदेव की स्तुति की। कामदेव प्रसन्न हुए। देवताओं ने कहा शिवजी की समाधि आप तुड़ायें। 'कामदेव किन्नरों, गंधर्वो और अप्सराओं को लेकर धरती पर पांव रखते हैं, और अपने प्रभाव का विस्तार करते हैं। समाज पर इसका असर कैसे हुआ? जलचर, थलचर और नभचर जीवमात्रा में कामेषणा प्रकटो अपने समय, सिद्धान्त, स्थान- सब कुछ भूलकर सब कोई भोग में डूबने लगे। बाबाजी ने लिखा है कि बड़े-बड़े योगी और सिद्ध भी काम-विवश काम के अधीन हो गए।

जो लोग संसार में सर्वत्र सब कुछ ब्रह्ममय अनुभव करते थे, इतनी ऊंचाई पर पहुचे लोगों को भी समग्र जगत नारीमय लगने लगा। काम इतनी हद तक सफल हो गया। कामदेव के प्रभाव का ऐसा वर्णन करने के बाद तुलसीदास जी को विचार आया कि मैंने तो काम के खप्पर में सबको स्वाहा कर दिया। तो काम के प्रभाव में से कोई बचा नहीं? एक भी ऐसा जितेन्द्रिय नहीं था क्योंकि जिसका काम कुछ भी नहीं बिगाड़ सके।

इसलिए एक सोरठे में सुधार किया गया-जे राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि कालमहं 'केवल वह ही बचे कि जिनको राम ने बचाया। प्रमु की शरणा गति बिना काम के फन्दे से बचना मुश्किल बात है। कामदेव

अपने सहायकों के साथ शिवजी के पास गया। शिवजी का ध्यानस्थ स्वरूप देखकर दो कदम रुक भी गया। एक क्षण भर के लिए यह सोचा भी कि शिवजी की समाधि तुडाना बहुत कठिन है। इसमें मेरी मृत्यु है। किन्तु यहां आने के बाद यदि वापस जाऊंगा तो उसमें मेरा बड़प्पन नहीं है। कार्य करने आया हूं तो पूरा ही करूंगा।

कामदेव ने सुन्दर रूप धारण किया। कमल खिलने लगे, भ्रमर गुंजन करने लगे, मृदंग बजने लगे, अप्सरायें शिवजी के चारों ओर नृत्य करने लगीं। शिवजी के नेत्र खोलने के लिये काम एक के बाद एक अपनी कला का प्रयोग करने लगा। किन्तु शिवजी की समाधि नहीं टूटी। शिवजी बिल्कुल अचल रहे। काम थक गया। अपनी नृत्यांगनाओं से कहा, "नृत्य बंद कर दो" इसके बाद वृक्षों पत्तों की लदी डाली के पीछे छुप करके कामदेव ने पुष्प धनुष बाण का अपना अंतिम शस्त्र तैयार किया। कामदेव का तीर किसी धातु से नहीं बनता है, पुष्प का है, पुष्प का तीर अच्छे अच्छे शूरवोरों का, योगियों का पतन करता है।

तुलसोदासजी कहना चाहते हैं कि जिस द्वार से काम प्रवेश करता है उसी द्वार से उसे मारो, संत कहते हैं- धर्म, अर्थ, काम, इसका एक और अर्थ मोक्ष के चार पुरुषार्थों में काम का स्थान तीसरा है। तीसरे स्थान वाले काम को मारने के लिये प्रत्येक साधक में तीसरा नेत्र खुनना चाहिए. कामदेव जल कर भस्म हो गया। समत्र संसार में हाहाकार मच गया। योगा स्किंटकं बन कर उत्सव मनाने लगे। उन्हें लगा कि अब हमारी साधना में कोई विक्षेप नहीं करेगा। जितने भोगो थे वह सब रोने लग गये। उन्हें लगा कि अब जीवन में कोई रस ही नहीं रहा।

कामदेव की पत्नी रति विधवा हो गई। वह अपने बाल खुले छोड़कर विलाप करने लगी और शिवजी के पास गई। धरती पर गिरकर रुदन करने लगी। रति के आंसू देखकर शिवजी को दया आ गई। उनका गुस्सा शांत हो गया। इस घटना द्वारा तुलसीदासजी जगत को बताना चाहते हैं कि जीवन की साधना में कभी कभी क्रोध की भी आवश्यकता है। वह साधना में सहायक बनेगा किन्तु क्रोध तो घर के नौकर जैसा होना चाहिए।

नौकर को पानी भर कर लाने को कहें तो वह पानी ले आये और उसे चले जाने को कहें तो चला जाये। क्रोध के ऊपर ऐसा काबू रहे तो वह क्रोध साधना में सहायक बन सकता है। हमारे जीवन में जो क्रोध है वह नौकर के जैसा नहीं, किन्तु मालिक जैसा व्यवहार करता है। क्रोध कहता है उसे भला बुरा कहो, और हम कहते है। क्रोध कहता है तू उसे फटकार, और हम फटकारते। तुलसोदास जी कहते हैं कि क्रोध में कला होनी चाहिए कामदेव आया तो क्रोध। रति आई तो क्रोध को विदाई दे दी। बस ,आवश्यकता होने पर क्रोध को बुलाइये और आवश्यकता पूरी होने पर उसे विदा करो।

कामदेव ने शिवजी को बराबर लक्ष्य में लिया। अखण्ड ध्यान में लीन बने हुये शिवजी को उसने ठीक से देख लिया। और जैसे अंतिम प्रहार किया कि उसके साथ ही शिव-स्वरूप डोलने लगा। कामदेव ने देखा

कि बदन हिल रहा है। धीरे-धीरे नेत्रखुले । शान्त मुखमुद्रा। शिवजी ने चारों ओर दृष्टि की। देखते-देखते वृक्ष की डाली में छिपे हुये कामदेव को देखा। कामदेव को देखते ही के नेत्र एकदम लाल हो गए, शरीर कांपने लगा। उनके कंपन से तीनों लोक कांपने लगे, शिवजी जगत का संहार कर देंगे। उतने में शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला और दृष्टि कामदेव पर पड़ी, इसके साथ हो कामदेव जल कर भस्म हो गया।

बहुत सीधी बात है। प्रत्येक साधक का जब तीसरा नेत्र खुलता है, तब या तो साधक निष्कामना के शिखर पर पहुंचता है, तब काम खत्म हो जाता है। तीसरा नेत्र सब में होता है। प्रारब्ध पूरा होने के पहले जो उसको खोल सके वह शिव और प्रारब्ध पूरा हो जाये तब तक भी खोल नहीं सके वह जीव। प्रत्येक मानव को शंकराचार्य अथवा रामकृष्ण परमहंस बनने का अधिकार है। आवश्यकता यही है कि ऐसी दृष्टि उत्पन्न होनी चाहिये, और इस दिशा में रूचि बननी चाहिए तो तीसरा नेत्र खुलेगा और काम जलेगा। आंख द्वारा, आंख खोलते ही काम जल जाये यह कितनी बड़ी बात है। अधिकांश काम का प्रवेश आंख से ही होता है।

संगीत की महफिल हो तब वाद्य को सुर में लाने के लिए तमाम कला का ताल मिलाते हैं। उस समय तबला बजाने वाला भी तबला खींचता है, ठोक-पीट करके उसे गरम करता है। संगीत अथवा भजन का कार्यक्रम पूरा होने तक उसे कस कर रखता है, और जलसा पूरा होने के साथ ही उसे उतार डालता है। यदि तबलची उसे उतारे नहीं, कसा हुआ ही रखे तो तबला टूट जाता है। इसी तरह हमारे मस्तक रूपी तबले को भी आवश्यकता हो तब तक हो खीचकर रखना चाहिए , हमेशा नहीं। परन्तु करुणा तो यह है कि हमारे समाज में कितने ही ऐसे तबले हैं जो चौबीसों घण्टे चढ़ रहते हैं। परिणामतः उनका जीवन संगीतहीन हो जाता है। ऐसे जीवन में ईश्वर कहां से आये?

रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि जिसे क्रोध आये वह चुप हो जाये। थोड़ा अधिक मौन का पालन करे। क्रोध के ऊपर नियन्त्रण लाने के लिए मौन बहुत आवश्यक है। आने पर दस मिनट मौन हो जाये तो ग्यारहवीं मिनट को चला जाता है। किन्तु दस मिनट चुप रहने के लिए बहुत बड़ी साधना की आवश्यकता है। एक बार एक आदमी ने भगवान बुद्ध को बहुत गालियां दीं। बुद्ध बिलकुल मौन रहे, शांत रहे। वह आधे घण्टे के बाद गालियां देकर थक गया। उसके बाद बुद्ध ने शांत स्वर में कहा 'तुमने भेंट देने की मुझ पर बहुत बड़ी कृपा की है, किन्तु कुछ समय से मैंने भेंट लेना छोड़ दिया है। अर्थात् तुमने मुझे बहुत गालियां दी हैं किन्तु मैं एक भी गाली स्वीकार करता नहीं।' वह आदमी बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा।

शिवजी के क्रोध में कला है। शिवजी जो करते हैं, किन्तु योग्य समय पर करते हैं। पुराणों में वर्णन है कि शिवजी जब कोपायमान होते हैं तो सारा ब्रह्माण्ड कांपने लगता है। फिर भी शिवजी को क्रोधावतार नहीं कहा। वह 'कर्पूर गौरम् करुणावतारम्' करुणा के अवतार माने जाते हैं। उनके क्रोध में कला थी। रति को भगवान शिवजी ने आशीर्वाद दिया, 'रति मैंने तेरे पति को जला दिया है। किन्तु जा तुझे मेरा

आशीर्वाद है कि द्वापर में यदुवंश में जब कृष्णावतार होगा तब कृष्ण का पुत्र तुझे पति के रूप में प्राप्त होगा। तब तक तेरा पति शरीर के बिना इस वरदान को सबके जीवन में निवास करेगा। आशीर्वाद प्राप्त करके रति ने विदाई ली।

देवों की प्रार्थना

देवतागण योग्य समय देखकर ब्रह्माजी की अगवानी में शिवजी के पास आये और अलग अलग रीति से उनकी प्रशंसा करने लगे। देवताओं का नियम है कि स्तुति हमेशा सामूहिक स्वर में ही करते हैं। किन्तु काम कुछ ऐसा था कि सब एक पंक्ति में खड़े रहे और व्यक्तिगत रूप से प्रार्थना करने लगे। भगवान शिवजी समझ गए। बोले- 'आप किस काम के लिए आये हैं? आप तो अमर अविनाशी हैं। मैं भी अविनाशी हूं। हम सबकी स्थिति एक है। फिर भी मैं शांत हूं और आप इतने भय भीत क्यों हैं?"

बात सत्य है। देवता अमर बने हैं, किन्तु निर्भय बनने के बाद भी इनकी दृष्टि बहुत नोची है। देवत्व की उपासना के बाद भी इन्द्र अपने गलत विचार लेकर यदि गौतम ऋषि के आश्रम में जा सकता हो तो ऐसा देवत्व किस काम का? देवता अपना स्वार्थ छोड़ सकते नहीं हैं, ईर्ष्या छोर सकते नहीं, दूसरों की साधना में बाधा उत्पन्न करने की आदत को छोड़ सकते नहीं, विलास छोड़ सकते नहीं। देव बनना कोई कठिन कार्य नहीं है। अधिक पुण्य करो, देव हो जाओगे। कठिन तो यह है कि जिस स्थान पर हम श्वांस लेते हैं वहां सच्चा मानव बनकर रहने का। कठिन तो यह है कि जिस देश में हमने जन्म लिया है उस देश के ऋषियों का श्राद्ध कर सकें ऐसी योग्यता प्राप्त करने का।

प्रभु से कहना कि हम देव नही बनना चाहते, हम अमर नहीं बनना चाहते, हमें मारे और फिर से जन्म दे, तेरा कार्य करते-करते मस्ती से आनन्द से जीवन जियेंगे। व्यवहार में ऐसा कहा जाता है कि मानव जीवन प्राप्त हुआ है। किन्तु धर्मग्रन्थों की दृष्टि से तो मानव जन्म प्राप्त हुआ है, जीवन नहीं प्राप्त हुआ। जन्म से मृत्यु तक की यात्रा में मानव को जीवन प्राप्त करना पड़ेगा। बहुत कम लोग जीवन प्राप्त कर सके हैं। बाकी तो सब जन्म लेते हैं और मरते हैं, जीवन नहीं प्राप्त करते। जीवन तो प्राप्त किया नरसिंह ने, शिवजी ने, तुलसीदासजी ने, शंकराचार्यजी ने। यह जीवन है। उनके चरित्र लिखे गये हैं। उनके शब्द शास्त्र बन गए हैं।

तुलसीदास जी वर्णन करते हैं कि सारे देव भयभीत बनकर आए हैं। शिबजी ने पूछा-भयभीत क्यों हैं? कहिये।' ब्रह्माजी बुद्धि के देवता हैं। उन्होंने युक्ति करके कहा- ऐसे तो हम बिहार करने निकले थे। यह सारे देवता मेरे पीछे लगे हैं। कहते हैं, देवलोक कहाँ गया है किसी की शादी में वातावरण रसहीन होती नहीं। किसी की बारात में जाने का भी मौका मिलता नहीं। मैंने इनसे कहा- चलो, शिवजी के पास चलें। शिवजी यदि शादी करें तो बारात में जाने का प्रसंग हो सकता है। यदि ऐसा हो तो वातावरण में थोड़ा मनोरंजन भी हो सकता है।

ब्रह्माजी ने असली बात की ही नहीं। उन्होंने शिवजी को यह नहीं कहा कि आप शादी करें तो आपके यहां जो पुत्र- जन्म हो वह पुत्र तारकासुर को मारे और उसके मरने पर हमें शान्ति प्राप्त हो। जो चतुर लोग होते हैं वह असली बात को अलग ढंग से हो प्रस्तुत करते हैं। चतुराई सब जगह पर चल सकती है, किन्तु ईश्वर के पास नहीं चलती।

तुलसीदास जी कहते हैं कि जीव मन, कर्म और वचन से चतुराई छोड़ दे तब ही प्रभु प्राप्ति कर सकता है। ब्रह्माजी ने जब शिवजी के पास चतुराई से बात प्रस्तुत की तब शिवजी ने कहा, 'मैं आपकी चालको समझता हूं। आपके कहने पर मैं विवाह कर लूँ ऐसा सीधा मैं नहीं हूं। किन्तु भगवान् रामजी ने मुझे आदेश दिया है इसलिए मैं विवाह करूंगा। " शिवजी ने जब विवाह करने के लिए हां कह दी तब देवताओं ने बाजे बजाये, सर्वत्र जय-जयकार होने लगा। ब्रह्माजी ने तुरन्त ही सप्तपियों को हिमाचल के यहां भेजा और कहा कि लग्न-पत्र लिखाकर लाओ।

सप्तर्षि हिमाचल प्रदेश गये। पुनः एक बार उन्होंने पार्वती जी की परीक्षा ली। पार्वतोजी सफल रहीं। हिमाचल ने लग्न पत्र तैयार किया। सप्तर्षि उसे लेकर आये और ब्रह्माजी को अर्पण किया। ब्रह्माजी ने उसे शिवजी को पढ़ सुनाया और कहा कि दिन बहुत कम हैं। हमें जल्दी तैयारी करनी पड़ेगी।

शिवजी की बारात

सारे देवता शिवजी की बारात में जाने के लिए तैयार हुए मगर कितने स्वार्थी! प्रत्येक देवता ने अपने विमान को सजाया, अपने अपने शरीर सजाये। मगर कोई देव शिवजी को शृंगार करने नहीं गया। तमाम बाराती अच्छी तरह तैयार हो गये। शिवजी ज्यों के त्यों ही बैठे रहे। इतने में शिवजी के दो तीन गण आये। उनको महसूस हुआ कि हमारे मालिक का विवाह हो रहा है, हमें उनको सजाना चाहिये। और गण अपने ढंग से शिवजी को सजाने लगे। कामदेव को जलाने के समय क्रोध से जो जटा बिखर गई थीं, उन्हें ठीक से एकत्रित करके बांध दिया, और मुकुट के रूप में एक सांप बैठाया। एक गण दौड़ता दौड़ता शमशान की भस्म लेकर आया और दूल्हे के शरीर पर उसका लेपन कर किया।

कानों में कुंडलों के स्थान पर तथा हाथों में कंगनों के स्थान पर सर्पों को बांधा। जनेऊ की जगह भी सांप लटकाया। गले में मरे हुए मनुष्यों की खोपड़ियों की माला धारण कराई। गणों की बहुत विनती को मानकर कमर मैं एक मृगछाला बांधी। हाथ में त्रिशूल लिया और नंदी पर सवार होकर दुल्हा तैयार हो गया दुनिया का यह विचित्र दूल्हा है। जीव से तमाम रूप में विपरीत। जीव अपने विवाह में हल्दी का लेपन करता है, तेल-इत्र लगाकर शरीर को ऊपर से सुगंधित बनाने का प्रयत्न करता है। शिवजी अपने विवाह में भस्म रमाते हैं। इसका अर्थ यह है कि जीवन में शरीर केन्द्र नहीं है। यह एक दिन भस्म होने वाला है।

दूसरा, जीव शादी में सोने चांदो के गहने पहनता है। शिवजी ने आभूषण में सर्प लिपटाये हैं और जगत को यह बात बताई है कि आभूषण पहनना पाप नही है किन्तु मैं सर्प लिपटा कर यह कहना चाहता हूं कि आभूषणों में आवश्यकता से अधिक आसक्ति उत्पन्न हो गई तो हे जीव, यह आभूषण भुजंग बनकर तुझे काट खायेंगे। बात बहुत सीधी है। जब संपति का अतिरेक होता है तब संपत्ति विपत्ति बनती है। प्रत्येक वस्तु को अपनी मर्यादा होती है। जो मानव संपत्ति प्राप्त करने के बाद चैन की नींद नहीं सो सकता उसकी संपत्ति भला किस काम की? जीवन में उसे क्या प्राप्त हुआ? संपत्ति का अतिरेक विपत्ति है। अति सुख का दूसरा नाम ही दुःख है।

शिवजी ने गहनों में सर्प लिपटाकर जगत को अनासक्ति का तथा शरीर पर भस्म रमाकर नश्वरता का बोध दिया है।तीसरा, जीव विवाह में हाथ में तलवार धारण करता है और शिवजी विवाह में त्रिशूल धारण करते हैं। त्रिशूल का अर्थ है तीनों प्रकार के शूल काम, क्रोध और लोभ, इन तीनों को शिवजी ने अपने हाथ में पकड़ कर रखा है। अर्थात् इन दुर्गुणों के ऊपर शिवजी का काबू है। चौथा, जीव विवाह के समय घोड़े पर सवार होता है, और शिवजी विवाह के समय नंदी के ऊपर बैठते हैं, बैल की सवारी करते हैं। चार पांव वाला नदी धर्म का स्वरूप है। भगवान् शिवजी ने नंदी के ऊपर सवारी करके जगत को यह बताया है कि मैं विवाह करने जा रहा हूं तब मेरी सवारी धर्म की है। मेरा जीवन धर्ममय है।

इस प्रकार दूल्हा तैयार हो गया। शिवजी की बारात में बाराती बहुत हैं। देवता हैं, उनके परिबार की स्त्रियां हैं, सर्व हैं। मानस में ऐसा लिखा है कि देवताओं की पत्नियां साड़ियों में मुख छुपाकर शिवजी का उपहास करने लगी थी कि जिसको ऐसा पति प्राप्त होगा, हाय! उस कन्या के भाग्य अस्त हो गये हैं। देवता भी तमाशा कर रहे थे। उन्होंने ब्रह्माजी से कहा, "महाराज, शंकरजी ने मृगचर्म तो बांधा है, किन्तु इनकी दशा दिगंबर जैसी है। शरीर पर भस्म रमाकर और इनके पीछे-पीछे गणों की टोली है। इससे विपरीत हमने पीताम्बर पहने हैं, सुन्दर आभूषण पहने हैं। हमारे तो विमान भी हैं, इनके साथ चलने में हमारी शोभा नहीं है। शिवजी को हमसे अलग चलाओ।"

ब्रह्माजी ने कहा, "शिवजी को अलग नहीं कर सकते। अलग चलने को कहें और संभव है कि उन का दिमाग घूम जाए और कह दें कि आप सब जायें मैं तो यहां बैठता हूं,में विवाह नहीं करता। उन्हें तो बिवाह के लिए बड़ी मुश्किल सेउनकी इच्छा के विपरीत मना कर तैयार किया है। भगवान के विवाह के पश्चात ही तारकासर का नाश हो सकता है। यह हमारा स्वार्थ है। इसलिए उन्हें अलग नहीं कर सकते। "मगर देवता तो अलग चलना चाहते थे। अब क्या करना? अन्त में ब्रह्माजी ने एक युक्ति बताई। व्यवस्था के नाम पर सब अपने अपने समाज के साथ अलग-अलग चलने लगे तो शिवजी अपने आप अलग हो जायेंगे देवताओं ने ऐसा ही किया। इस से शिवजी सबसे अलग हो गये।

शिवजी समझ गए कि यह लोग मेरे साथ चलना पसन्द नहीं करते, इसलिए इन्होंने यह युक्ति की है। इसका दूसरा अर्थ यह है कि शिवजी किसी को अलग करते नहीं हैं, जींव अपने घमन्ड मैं, अपने वैभव

के नशे में अपने आप ही अलग हो जाता है। तमाम देवता अलग हो गये। इसलिए शिवजी ने भृगी नाम के अपने गण से कहा, "भृगी, तू एक काम कर। संसार के तमाम श्मशानों के भूत प्रतों को मानसिक मंत्रशक्ति से निमन्त्रण दे कि हमारे मालिक का विवाह हो रहा है, इसलिए जितना हो सके जल्दी से आयें।" मानसिक मंत्रशक्ति का प्रयोग होते ही जगत के तमाम श्मशानों के भूत-प्रेत उठ बैठे। इसमें से कुछ तो हट्ट-कट्ट थे तो कुछ बहुत दुबले थे। कितनों के चेहरे मानवीय थे तो बहुतों के चेहरे पशुओं के थे कुछ पवित्र, कुछ अपवित्र। हजारों भूत-प्रेतों की भीड़ जमा हो गई।

शिवजी इन सबकों स्वीकार करते हैं। शिवजी कहते हैं- आप सबल हो या दुर्बल, पवित्र हो या अपवित्र, एक बार मुझ तक पहुंच जाओ, बस बाकी सब कुछ मैं कर लूंगा। शिवजी के दरबार में मंदभाव को कोई स्थान नहीं है। इसलिए, हमारी परंपरा में शिव मन्दिर में पर्दा नहीं रखा जाता है। श्रीकृष्ण मन्दिरों में, श्री राम मन्दिरों में या अन्य मन्दिरों में समय से नहीं गये तो दर्शन नहीं होते, इनके दर्शन प्रातःकाल में या बाद में राजभोग के समय, इनके बाद जाओ तो बंद। शिवजी का दरबार हो एक ऐसा दरबार है कि चौबीसों घंटे खुला रहता है। शिवजी जी शयन कर रहे हैं ऐसा कहीं सुना नहीं है। जीव को अपने पास बुलाने के लिए वह हमेशा जागते रहते हैं। शिव मंदिर का घंटनाद सबको निमंत्रण देता है।

अनेक गुणों के बीच घिरे हुए शिवजी को देखकर देवता और उनकी स्त्रियां कहने लगीं जैसा दूल्हा ऐसी बारात हो गई! गस्ते में सब लोग आनंद विनोद कर रहे हैं। बारात आगे बढ़ रही है। शिव समाज और देवताओं का समाज हिमाचल प्रदेश पहुंचने की तैयारी में है। देवताओं ने सोचा हम भगवान शिवजी का विवाह कराने आए हैं। किन्तु दूल्हे को आगे रखेंगे तो उसे देखने के बाद कन्या पक्ष के लोग जो स्वागत करने आयेंगे, वह सब भाग उठेंगे, कोई खड़ा नहीं रहेगा। इससे शिवजी का तो अपमान होगा ही, यह तो ठीक, किन्तु हमारा सन्मान कौन करेगा? हमारे रहने खाने की व्यवस्था कौन करेगा? और ऐसा सोचकर सन्मान प्रिय देवताओं ने अपना समाज आगे करके दूल्हे को पीछे कर दिया। गणों ने शिवजी से पूछा, “महाराज, दूल्हे तो आप हैं, फिर आप पीछे क्यों?"

शिवजी ने कहा, "जिनको सन्मान की भूख है, उन्हें आगे रहने दो। हम पीछे ही ठीक हैं।" तमाम देवताओं का समाज आगे और सदाशिव का समाज पीछे, इस तरह सब व्यवस्था हो गई। देवता अपने-अपने निवासों में पहुंच गये। शिवजी अपने आप ही लग्न-मंडप में गये। अपमान का असर जो मानस पर हो तो वह शिवजा कैसे हो सकते हैं?

शिवजी का स्वरूप

भगवान् शिवजी का सम्मान करने संबंधो शोभा यात्रा लेकर आते है। हिमाचल प्रदेश के लोगों के हृदय में आनंद-सागर उमड़ उठा है। पार्वती जी की माता मैनाजी के हृदय में बहुत मंगल भाव है कि मेरी पुत्री ने जिनके लिए इतनी कड़ी साधना की है वह दामाद कितना सुन्दर होगा! ऐसे एक भाव के साथ मैनाने

आरती को थाली सजा दी। मानस में ऐसा वर्णन है कि मैनाजी अपनी सखी के साथ आरती करने आईं तो आरती हाथ से गिर पड़ी। संत कहते हैं कि प्रारंभ में मैना जो को शिवजी का भीषण रूप नहीं दीखा। फिर भी उनके हाथ से आरती गिर गई।

इसका कारण एक ही है कि- मैनाजी ने जब आरती तैयार की तब उनके मन का भाव यह था कि आरती को कलात्मक रूप से सजाकर ले जाऊ कि उसे देखकर मेरे दामाद खुश-खुश हो जायेंगे। किन्तु जहां आरती उतारने गई कि वहां शिवजी के ललाट में चन्द्र को देखते ही आरती गिर गई। उन को लगा जिसके ललाट में स्वयं चन्द्र हो उसके आगे मेरे इन दीपकों को ज्योतियों की क्या गणना

भगवान शिवजी का भीषण रूप जब दूसरी बार देखा तो तमाम महिलायें भागने लगीं। मैना जी बेहोश हो गई। घर में जाकर अपनी पुत्री को गोद में लेकर निर्णय लिया कि कुछ भी हो परन्तु इस दूल्हे के साथ अपनी कन्या का कन्यादान कभी नहीं होने दूंगी। मेरी इतनी सुन्दर पुत्री का ऐसा दुल्हा! जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिये वह क्या बबूल में लगेगा? मैना विधाता को दोष देने लगीं। सारे गांव में आतंक फैल गया। शिवजी का मंडप के द्वार पर दूसरी बार अपमान हुआ। फिर भी वही स्थिति।

तुल्य प्रियाऽप्रियो धीरस्तुल्य निंदात्मसंस्तुति।

देवताओं ने शिवजी से कहा- 'महाराज, आपके गले में सांप देख करके आपकी सास बेसुध हो गई हैं। कम से कम शादी पूरी होने तक तो इन्हें निकाल दो शिवजी ने कहा- मुझे महारानी पर दया आती है। मेरे गले में सर्प देख कर तो उसे खुश होना चाहिये। मैं काल को गले में लटका कर आया हूं। अतः इनकी बेटी का सुहाग अखण्ड हो गया। मेरी सास को क्या ऐसा दामाद चाहिए जो उसकी बेटी के सुहाग का नाश करे? मेरे वेष में कोई परिवर्तन नहीं होगा।' बाद में तो नारदजी और सप्तर्षि आते हैं। हिमाचल के भवन में जाकर मैना और हिमाचल को समझाते हैं, कि यह पार्वती आपकी पुत्री नहीं है, यह तो जगत की माता हैं और यह शिवजी तो अखण्डानन्द ब्रह्म हैं, जगत के पिता हैं। इतनी स्पष्टता के बाद हिमाचल और मैना की दृष्टि खुली। इसका अर्थ यह हुआ कि शक्ति घर में हो और शिव द्वार पर खड़ा हो, फिर भी जब तक नारद जैसा सन्त स्पष्ट न करे तब तक जीव को समझ आती नहीं है।

नारद की स्पष्टता के बाद को पुनः पुनः वंदन करने लगे। सबको नया भाव जाग्रत हुआ सब कोई पार्वती शिवजी की वंदन करने लगे। मैना और हिमाचल ने पुत्री का हाथ शिवजी के हाथ में रख कर कन्या समर्पित की। पुष्प वृष्टि हुई। कन्यादान की वस्तुयें शिव के चरण में रखकर हिमाचल बोले- 'हे कामना से परिपूर्ण भगवान शिव, मैं आपको क्या दे सकता हूँ? मेरी बेटी आज से आपकी दासी बनती है,उसे अपने घर की किकरी मानना। उससे कोई गलती हो जाये तो उसे संस्कार देने वाले माता-पिता की गलती जान कर क्षमा करना, हमारी लाड़ली को माफ करना।'

इस प्रकार सजल नेत्र से माता पिता ने अपनी कन्या को विदा किया। इस प्रकार भगवान शिवजी का विवाह सम्पन्न हुआ। समग्र समाज विदा लेता है। शिवजी तथा पार्वतीजो कैलास पहुंचते हैं। उनका दिव्य दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ हुआ। समय व्यतीत होने पर कार्तिकेय स्वामी का जन्म हुआ। उन्होंने तारकासुर नाम के राक्षस का वध किया और जगत की चिन्ता का शमन किया। शिव और पार्वती को एक और भी पुत्र को प्राप्ति होती है, और वह हैं गणपतिजी।

शिव कथा का तात्पर्य

रामकथा के पहले तुलसीदासजी ने इतनी कथा भी सहेतुकी है। प्रत्येक शिवजी की कहीं यह व्यक्ति में चार वस्तु का समन्वय होता है उसके बाद ही रामकथा को प्रारम्भ होता है। एक तो श्रद्धा और विश्वास का विवाह होना चाहिए। श्रद्धा का कन्यादान विश्वास के साथ में होना चाहिए। उन दोनों के मिलन से जो उत्पत्ति होती है वे हैं कार्तिक स्वामी और गणेशजी। कार्तिक को पुरुषार्थ का प्रतीक माना गया है और गणेशजी को विवेक का। मानव में पुरुषार्थ बहुत होता है, परन्तु विवेक न हो तो पुरुषार्थ घातक सिद्ध होगा। इसलिये श्रद्धा, विश्वास, पुरुषार्थ और विवेक- इन चारों का संकलन जब कैलाश के शिखर पर हो, उसके बाद ही रामकथा की गंगा प्रारम्भ होगी।

शिवजी की इतनी कथा कहकर अन्त में याज्ञवल्क्य महाराज, भरद्वाज मुनि से कहते हैं कि महाराज आपने तो मुझसे रामकथा पूछी थी, मैंने रामकथा के बदले में आपको पहले शिवकथा सुनाई। यह विषयान्तर मैंने जानबूझ कर किया है। मैं यह जानना चाहता था कि शिव-चरित्र में आपको रस प्राप्त होता है या नहीं? हे भरद्वाजजी जिसे शिवकथा में रस प्राप्त नहीं होता उसे रामकथा का अधिकार प्राप्त नहीं होता। 'रामभक्ति प्राप्त करने के लिए शिव की उपा सना अनिवार्य है। शिव तो राममन्दिर का द्वार है। शिव बिना राम के पास नहीं पहुंच सकते।

याज्ञवल्क्य जी ने भरद्वाजजी की परीक्षा कर ली। हमारे भारत में सन्त महर्षि मार्गदर्शन देने के पहले साधक की गति देख लेते थे। मेरा वक्तव्य असफल तो सिद्ध नहीं होगा ना, यह देख लेते थे। शिव चरित्र कहकर याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी का मर्म जान लिया कि यह राम के सच्चे भक्त हैं, इसका भरोसा कर लिया और उसके बाद वह रामकथा का प्रारम्भ करते हैं।

भवानी की जिज्ञासा

भगवान शिवजी अपने नित्यकर्म से निवृत होकर कैलाश के उस पुराण प्रसिद्ध शिखर के ऊपर वटवृक्ष की छाया में विराजित थे। जटा का मुकट है, भाल में त्रिपुण्ड शोभायमान है, मृगचर्म लिपटा हुआ है। निकट में गंगा धारा बह रही है। शीतल वायु धीरे-धीरे बह रही है। आज शिवजी बहुत प्रसन्न हैं। ऐसे योग्य समय को देख करके भवानी शिवजी के पास आई। शिवजी ने उनका स्वागत किया और अपनी

बायीं ओर बैठने का इशारा किया। भवानी शिवजी के मुखचन्द्र की ओर देख रही हैं। शिवजी ने प्रसन्नवदन से कहा- 'देवी! आप कुछ पूछना चाहती हैं?"

हां भगवान एक प्रश्न पूछना है, कैलाश के शिखर के ऊपर आपकी छत्रछाया में आपके चरणों की दासी बनकर मैं बैठी हूं, फिर भी मेरे मन का संशय यदि निर्मूल न हो तो इसके समान और दुर्भाग्य क्या हो सकता है? यह सवाल मुझे सताता "किन्तु महाराज, प्रश्न करने के पूर्व एक बात स्पष्ट करना चाहती हूं, कि पहले मैं जो पूछती थी वह परीक्षा वृत्ति से पूछती थी, अब जिज्ञासा से पूछती हूं। महाराज, हृदय से कहती हूं कि, एक जन्म पूरा करके दूसरा जन्म लिया है, मगर एक वस्तु का समाधान मेरे मन में नहीं होता कि राम ब्रह्म हैं कि मनुष्य? मेरा मन सतत विद्रोह करता है!"

यदि राम राजकुमार हों तो ब्रह्म कैसे कहा जा सकता है? और यदि वह ब्रह्म हैं तो वह राजकुमार कैसे हो सकते हैं? प्रभु! इसको स्पष्ट करें।" इसका अर्थ यह हुआ कि पार्वती जैसो शक्ति को, आद्यशक्ति भवानी को एक जन्म पूरा करके दूसरा जन्म लेने पर भी रामतत्व समझ में आया नहीं। यह बताता है कि रामतत्व को समझने के गीता लिये बडी लम्बी यात्रा को आवश्यकता है। ब्रह्मा ने भी अनेक जन्मों के बाद इसकी प्राप्ती की बात कही है। भवानी फिर पूछती हैं, "महाराज, शायद आप ऐसा कहें कि ब्रह्म लीला करने के लिए मनुष्य के स्वरूप में अवतार धारण करते है, तो मुझे प्रश्न उत्पन्न होता है कि ब्रह्म को यह सब करने की आवश्यकता क्यों थो? कदाचित् भगवान के कौतुको स्वभाव के कारण उन्हें संसार में आकर लीला करने की इच्छा हुई, तो महाराज, उनके अवतरणों के कारणों की कथा कहो।"

बाद में तो भवानी एक के बाद एक प्रश्न पूछती हैं। उनकी बाललीला कहो, उनकी शादो कैसे हुई यह कहो, राज्याभिषेक की कथा कहो, उसमें विघ्न कैसे आया यह कहो रामजी वन में गये और अवध पति की मृत्यु हुई वह दुःखद कथा कहो। भरतजो का आगमन राज्य की अस्वीकृति, भरत का चित्र कूट गमन, पादुकायें लेकर वापस आना-भरत के उस त्याग की और प्रेम की कथा कहो। रामजी चित्रकूट से पंचवटी गये और सीताजी का अपहरण हो गया यह कथा कहो। रामजी और लक्ष्मणजी सीताजी के विरह में घूमते थे जो हमने अपना नजरों से देखा था, यह कथा भी कहो। रामजी शबरी के आश्रम से पंपा सरोवर गये, हनुमानजी का मिलन हुआ, सुग्रीव के साथ दोस्ती हुई और बाली का वध हुआ यह कथा कहो।

सीताजी को खोज में वानर निकले और हनुमानजी लंका दहन करके सीताजी के समाचार लेकर आये, उस शौर्य और वीरता की कथा कहो। सेतुबंध के पुरुषार्थ की कथा कहो। रामेश्वरजी का स्थापन कर भगवान् शिवजी का आशीर्वाद लेकर रामजी लंका के रणांगण में पांव रखते हैं वह कथा कहो। युद्ध हुआ, रावणादि राक्षमों का विनाश हुआ इस विजय की कथा कहो, और अंत में राज्याभिषेक की कथा कहो। इतना तो आपको कहना हो होगा। इसके बाद भवानी एक स्वैच्छिक प्रश्न करती हैं। भगवान यदि

उचित समझें तो इसका जवाब दें, नहीं तो छोड़ दें। सतीजी का स्वैच्छिक प्रश्न यह है महाराज, प्रजा-सहित रामजी स्वधाम किस प्रकार गये यह कथा कहना चाहें तो कहें, और नहीं कहना चाहे तो न कहें।

(और शिवजा ने यह प्रश्न छोड़ दिया।) इसके अतिरिक्त ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, माया, जोव और शिवजी का भेद क्या है यह सर्व महत्व के प्रश्नों के प्रत्युत्तर भी देना। हिमाचलपुत्री प्रश्न पूछने में बहुत चतुर हैं। सबसे अंत में यह भी कहा कि महाराज, मैं कुछ पूछना भूल गई होऊं तो आप बिना छुपाये वह सब भी कह देना। भवानी के प्रश्न सुनकर शंकर भगवान् के हृदय में राम चरित्र लहराने लगा। शरीर पुलकित बना, नेत्र सजल बने। आंखें मूंद कर के शिवजी अंतर्मुख हो गये। रामजी का स्मरण किया। रामजी की अंतर में झांकी हुई।

शिवजी ने कथा कहने के लिये मन को जबरदस्ती से बाहर निकाला। मन को बाहर निकालते समय शिवजी ने अन्दर बैठे हुए रामजी से कहा महाराज, आपको तो अन्दर ही बैठने का है। कथा कहने के लिए मुझे तो आवश्यकता के कारण मन को बहिमख करना पड़ रहा है। इस प्रकार हृदय में रामजी को विराजित करके मन को बहिर्मुख कर भगवान् शिवजी राम-चरित्र कहने को तैयार हुए।

प्रारम्भ बहुत सुन्दर दीखता है। शिवजी कहते हैं, "हे पार्वती! जिस तत्व को ज्ञात किये बिना, जैसे प्रकाश के अभाव के कारण अन्धेरे में पड़ी हुई रस्सी में सर्प दीखता है, उसी तरह नकली वस्तु असल दीखती है। भवानी, यह तत्व ऐसा है कि उसे जानने के बाद में प्रत्येक भ्रांति का नाश होता है। किन्तु तत्व को ज्ञात नहीं किया है तो कितना भी भाषा का ज्ञान हो, चाहे जितनी विद्वता हो फिर भी असत् सत् लगता है। जिसको ज्ञात करने से सर्व संशय छिन्न हो जायें तमाम भ्रांतियों का अन्त हो वही तत्व भगवान् रामजी हैं।"

दो चौपाइयों में इतनी सष्टता करके भगवान् शिवजी तमाम सिद्धियों के दाता बाल राघवेन्द्र के चरणारविंद में इस प्रकार वंदन करते हैं। पार्वतीजी के प्रश्नों से प्रसन्न हुए शिवजी ने कहा, "देवा! आपके प्रश्न मुझे बहुत अच्छे लगे, किन्तु आपका एक प्रश्न अच्छा नहीं लगा। आप कहती हैं कि राम ब्रह्म नहीं हैं, रामजी कोई दूसरा तत्व हैं। ऐसो बात तो जो श्रुति विरोधी होता है, जिसे भगवान् के चरणों में प्रेम न हो, जिसे हानि लाभ का ख्याल नहीं हो, जिसे नीर-क्षीर का विवेक नहीं हो, ऐसे लोग करते हैं। आप तो भवानी हैं, देवी हैं। ऐसा कैसे कह सकती हैं कि राम कोई दूसरा तत्व है?"

देवो! राम किसे नहीं दीखते कहूं? जिसका दर्पण मैला हो ओर मति बिगड़ी हुई हो वह अपना सच्चा प्रतिविद प्राप्त नहीं कर सकता। जिसके मन का दर्पण मैला हो और जिसको आंख में विकृति आ गई हो उनको हृदय में बैठे हुए परमात्मा दीखते नहीं। "कितना सुन्दर कारण है! दो वस्तु हमें ईश्वर को अनुभूति से दूर रखतो हैं- मन को मलिनता और आंखको विकृति मन की मलिनता गई और आंख की विशुद्धि आई कि ईश्वर सामने ही खड़ा है।

रामावतार के कारण

तुलसीदासजी अब भगवान के अवतार के कारण बताते हैं। अवतार का पहला कारण है जय-विजय भगवान् के ये दो द्वारपाल द्वार की चौकसी करते थे तब महात्मागण भगवान् विष्णु के दर्शन को आये। जय-विजय ने उनको रोका। बड़ा अविवेकपूर्ण व्यवहार किया। महात्माओं ने शाप दिया-तुम राक्षस हो जाओ। भगवान् विष्णु को दया आई। महात्माओं को शाप में कुछ फेर-बदल करने को कहा।सन्तों ने कहा, "आपके साथ यदि बैर रखेंगे तो तीन जन्म में मुक्ति होगी और यदि भक्तिभाव रखेंगे तो सात जन्म में मुक्ति होगी।"

द्वारपालों ने निर्णय किया कि सात जन्म के बाद मुक्ति प्राप्त हो उससे तो बैर करके तीन जन्म में मुक्ति प्राप्त करना अधिक अच्छा है। सतयुग में ये दोनों द्वारपाल हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बने। उनको मारने के लिए भगवान् ने दो अवतार लिए एक वराह और दूसरा नरसिंह त्रेतायुग में वह रावण और कुंभकर्ण बने। उन को मारने के लिए भगवान् को रामावतार लेना पड़ा! द्वापरयुग में दंतवत्र और शिशुपाल बने। उन्हें मारने के लिए भगवान् ने कृष्णावतार लिया।

अवतार का दूसरा कारण है सती वृन्दा जलंधर नाम का राक्षस था। वृन्दा उसकी पत्नी थी। जलंधर देवताओं को नष्ट करने लगा। भगवान ने छलना करके जलंधर का नाश किया। वृन्दा ने शाप दिया- "मेरे पतिकी अनुपस्थिति में आपने झमु से छल किया है। रामावतार लेगे तब आपकी अनुपस्थिति में मेरा पति रावण बनकर आयेगा और आपकी पत्नी सीताजी का अपहरण करके ले जायेगा।" भगवान् ने शाप स्वीकार किया। शिवजी भवानी को रामावतार का तीसरा कारण बताते हैं।

एक बार नारदजी ने भगवान् को शाप दिया और इसलिए भगवान् को अवतार लेना पड़ा। नारदजी के शाप की कथा सुनकर पार्वतीजी को आश्चर्य हुआ, "महाराज, नारदजी तो विष्णु-भक्त हैं, ज्ञानी हैं। भगवान् ने ऐसा भी क्या अपराध किया कि उस ज्ञानी पुरुष ने शाप दिया। शंकरजी ने बहुत सुन्दर जवाब दिया, “देवी! संसार में कोई ज्ञानी नहीं है और कोई मूढ़ नहीं है। ईश्वर जिसे जैसा बनाता है वह वैसा ही बनता है।" बहुत ही सच्ची बात। रत्नाकर लूटेरा कब बाल्मीकि बन सकता है और विश्वामित्र कब मेनका के पीछे दौड़ सकते हैं, उसका कोई भरोसा नहीं। यह संसार तो कठपुतलियों का खेल है। सबको श्रीराम नचाते हैं।" नारदजी ज्ञानी हैं, किन्तु वह ज्ञानी मूढ़ कब बने यह पूरी कथा कहें" पार्वतीजी ने कहा।

शिवजी की आरती

जय शिव ओंकारा,हर शिव ओंकारा ।

ब्रह्मा,विष्णु,सद शिव अर्द्धांगी धारा।१। जय शिव ओंकारा

एकानन चतुरानन पंचानन राजै ।

हंसानन गरुड़ासन वृषवाहन साजे ।२।

दोय भुज चार चतुर्भुज दशभुज ते सोहै ।

तोनों रूप निरखता त्रिभुवन जन मोहै ।३।

अक्षमाला वनमाला रुण्ड मालाधारी ।

चन्दन मृगमद चन्दा भाले शुभकारा ।४।

श्वेतांबर पीतांबर बाघम्बर अंगे ।

सनकादिक ब्रह्मादिक भूतादिक संगे।५।

करमध्येक कमडलु चक्र त्रिशूल धरता ।

जगकर्ता जगहता जगपालन कर्ता ।६।

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका ।

प्रणवाक्षर के मध्ये ये तीनों एका ।७।

त्रिगुण स्वामी की आरती जो कोई नर गावे ।

भगत शिवानन्द स्वामी मन वांछित फल पावै ।८।

जय शिव ओंकारा, हो भन भज शिव ओंकारा, हो मन रट शिव ओंकारा, हो शिव गल मुण्डमाला, हो शिव ओढ़त मृगछाला, हो शिव पीते भंग प्याला, हो शिव रहते मतवाला, हो शिव पार्वती प्यारा, हो शिव ऊपर जलधारा।

ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव अर्द्धांगी धारा |९| हर हर हर महादेव |